हमारे स्वतंत्रता सेनानी

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773

- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563

- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667

- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027

- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-12-2

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : एक सौ रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

HAMARE SWANTANTRTA SENANI (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 100

प्रकाशकीय

भारत धीरों और वीरों की भूमि है। भारत के वैभव से आकृष्ट होकर जब-जब विधर्मी विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत भूमि को आक्रान्त किया है तब-तब भारत के स्वातंत्र्य सेनानियों ने उनके आक्रमणों को विफल कर भारत के स्वातंत्र्य सूर्य को विश्व के गगनमण्डल पर पुनः-पुनः फहराया है और भारत के गौरव को अक्षुण्ण रखा।

भारत के स्वातंत्र्य सेनानियों और विश्व के अन्य देश के स्वातंत्र्य सेनानियों में एक मौलिक अन्तर है। भारत सारी वसुधा को एक कुटुम्ब मानता है इसलिए भारत ने तलवार (शस्त्र) के बल पर विश्व विजय की आकांक्षा कभी नहीं संजोयी। विश्व के अन्य देशों पर राजसत्ता द्वारा शासन करने की बात न कभी मन में लायी और न कभी विश्व के अन्य देशों पर आक्रमण किया। पर विश्व के अन्य देश ने अपने राजनीतिक वैभव काल में अन्य देशों पर आक्रमण किया और उसी क्रम में भारत पर भी आक्रमण किया, तो हमने उसको सहा नहीं और मुंहतोड़ उत्तर दिया, और जब तक उनके आक्रमण को पूर्णतः निरस्त नहीं किया तब तक हमने स्वातंत्र्य समर जारी रखा और यह स्वातंत्र्य समर आज भी जारी है। हमारी कुछ दुर्बलताओं के कारण हमारे भाई विधर्मी और विदेशी बन गये हैं, इनको पुनः स्वधर्म और राष्ट्रीयधारा में लाने तक अविराम संघर्ष जारी रहेगा। ऐसे ही स्वातंत्र्य सेनानियों से सम्बन्धित लेख डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ खण्ड से संकलित हैं। इस पुस्तक का व्यय भार श्रीमान् मूलचन्दजी सोलंकी ने सहर्ष स्वीकार किया है। उन पर प्रभु की कृपा सपरिवार सदैव बरसती रहे। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग एवं परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

ॐ

पिताजी की प्रेरणा एवं ममतामयी माताजी
की स्मृति में पुत्रगण व पुत्रियों के सहयोग से

सर्वश्री लक्ष्मीकान्त एवं श्रीमती असलीदेवी सोलंकी (माली)
श्री मूलचन्द एवं श्रीमती सुशीला
श्री राजेन्द्रकुमार एवं श्रीमती मीनाकुमारी
श्री गोविन्द नारायण एवं श्रीमती संतोष
श्रीमती शांतिदेवी एवं श्री किशनलालजी
श्रीमती चन्द्रकला एवं श्री गणेशलालजी

निवासी
रानीसर बास
महारानी सुदर्शना कॉलेज के पीछे, बीकानेर
मोबाइल : 9460790002

अनुक्रम

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण

प्रसिद्ध इतिहासकार और प्रख्यात लेखक H.G. Wells अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'A Short History of the World' के पृष्ठ 95 पर लिखते हैं— सिकन्दर कैसपियन सागर के पास से, पश्चिमी तुर्किस्तान के पहाड़ों से होता हुआ हैरात, काबुल और दर्रा खैबर होते हुए भारत पहुँचा। Indus नदी के तट पर उसका भारतीय राजा पोरस के साथ भयंकर युद्ध हुआ। यहाँ उसके Macadonian सैनिकों ने पहली बार हाथी देखे थे। उन्होंने भारतीय सेना को हरा दिया। पुस्तक के पृष्ठ 104 पर फिर लिखा है, 'हम पहले बता चुके हैं कि किस तरह सिकन्दर महान् भारत आया और Indus के तट पर युद्ध में पोरस को हराया। कोई भी जिसे इतिहास का कुछ ज्ञान हो, जानता है कि सिकन्दर और पोरस का ऐतिहासिक युद्ध पंजाब में 'झेलम' नदी के किनारे हुआ था न कि Indus नदी के तट पर। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने इस नदी का नाम 'वितस्ता' लिखा है जो कि 'झेलम' नदी का पुराना नाम है। काश्मीरी लोककथाओं में आज भी इसे व्याथ कहा जाता है। यूनानी इतिहासकारों ने इस नदी को Hydaspes कहा है। सिकन्दर के युद्धों और आक्रमण का इतिहास, जो Curtilus द्वारा लिखित और Mecrindle द्वारा प्रकाशित पुस्तक Invasion-IX, अध्याय-II में इस युद्ध को 'Battle of Hydepes' बताया गया है।

प्रख्यात इतिहासकार राधाकुमुद मुकर्जी, यदुनाथ सरकार, के.पी. जायसवाल, जयचन्द्र विद्यालंकार और अन्य विश्वविख्यात इतिहासकारों का भी यही मत है। वास्तव में H.G. Wells के सिवाय और सभी इतिहासकार यही मानते रहे कि सिकन्दर और पोरस के मध्य युद्ध झेलम के स्थान पर हुआ था।

यह केवल कोई छोटी भूल नहीं है, किन्तु एक महान् ऐतिहासिक भ्रान्तिपूर्ण भूल है। H.G. Wells की 1300 पृष्ठों की बड़ी पुस्तक 'The Outline of History' में पृष्ठ 361 पर फिर यही भयंकर भ्रान्ति दोहराई हुई है, 'सिकन्दर ने ऊपरी Indus नदी के तट पर एक बलवान राजा पोरस से युद्ध किया, जिसमें पहली बार Macadonian सेना को हाथियों पर सवार सेना का सामना करना पड़ा और उन्हें हराया।'

इसी वृहत् इतिहास के पृष्ठ 104 पर H.G. Wells लिखते हैं, 'चन्द्रगुप्त, जिसे यूनानी Sandrecottus पुकारते थे, सिकन्दर से मिलने गए और उसे गंगा के मैदानी इलाकों में पहुँचकर पूरे भारत को विजय करने की सलाह दी।' यह तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर भ्रांति पैदा करने का एक और प्रयास है। यह मौर्यवंश के संस्थापक वीर चन्द्रगुप्त मौर्य को एक देशद्रोही दिखाने का यत्न किया गया है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के विषय में जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक 'The Discovery of India' के पृष्ठ 103 पर लिखा है, 'वे दोनों उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला पहुँचे और वहाँ वे यूनानियों (सिकन्दर) से मिले जो वहाँ पर कुछ दिन पहले ही आए थे। उन्होंने सिकन्दर की वीरता और महत्त्वाकांक्षा के विषय में सुन रखा था और सिकन्दर की भांति अपनी प्रभुसत्ता बढ़ाने के इच्छुक थे। वे उचित अवसर की प्रतीक्षा में थे। सन् 323 ईसा पूर्व में बेबीलोन में सिकन्दर की मृत्यु का समाचार मिलते ही चन्द्रगुप्त और चाणक्य एकजुट होकर भारतीयों में राष्ट्रभक्ति की भावना फूंकने में लग कर, विदेशी आक्रामकों के विरुद्ध आन्दोलन चला दिया।.....चन्द्रगुप्त का साम्राज्य अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक और उत्तर में काबुल तक फैला था। पहली बार इतिहास के अनुसार एक विशाल साम्राज्य का निर्माण हुआ।'

पंजाब के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जयचन्द्र विद्यालंकार चन्द्रगुप्त और सिकन्दर की पहली भेंट के बारे में लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर को स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह विदेशी आक्रामक होने के कारण भारत में बहुत विरोध पायेगा और चन्द्रगुप्त स्वयं भी उसका विरोध करेगा। सिकन्दर बहुत क्रोधित हो गया और अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि चन्द्रगुप्त की हत्या कर दी जाय। किन्तु वह किसी प्रकार चतुरता से उनके कैंप से निकल आए, अपनी सेनाएँ इकट्ठी की और सभी विदेशी आक्रामकों को भारत से भगा दिया।

प्रख्यात नाटककार जयशंकर प्रसाद अपने ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' में लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने मालवों, शूद्रकों की बड़ी सेना तैयार की और व्यास नदी के तट पर हुए युद्ध में सिकन्दर की सेना को बहुत क्षति पहुँचाई जिसके फलस्वरूप उसे पीछे हटने का निर्णय लेना पड़ा। प्रसाद ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में इतिहासकार Justinus का उल्लेख किया है जिन्होंने लिखा था, 'चन्द्रगुप्त और सिकन्दर की पहली भेंट में चन्द्रगुप्त की सम्मान रहित स्पष्टवादिता से क्रुद्ध हो सिकन्दर ने उसके वध की आज्ञा दे दी किन्तु, केवल युद्ध करके ही चन्द्रगुप्त बच सका।' इसी नाटक 'चन्द्रगुप्त' में सैल्यूकस की पुत्री कॉरनेलिया कहती है, 'सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, मैंने भारत का अध्ययन किया है। यह केवल यूनानी एवं भारतीय सेनाओं के मध्य युद्ध नहीं, यह तो भारतीय और यूनानी

ज्ञान-मनीषी—अरस्तू और चाणक्य के मध्य युद्ध है। सिकन्दर और चन्द्रगुप्त तो केवल मोहरे भर, प्रतीक हैं।' इतिहासवेत्ताओं के अनुसार नाटक की ऐतिहासिक महत्ता भी साहित्यिक गुणवत्ता से कम नहीं है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि H.G. Wells द्वारा Indus नदी के तट पर सिकन्दर-पोरस का युद्ध और चन्द्रगुप्त का राष्ट्रद्रोही के रूप में चित्रण बिल्कुल गलत और भ्रांति पैदा करने वाला वक्तव्य है।

क्या कोई भारतीय या विदेशी इतिहासकार इतिहास के पावन तथ्यों के साथ इस प्रकार के क्रूर अन्याय के विषय में अपने विचार प्रकट करेंगे?

हम (भारतीय) अपने इतिहास (संस्कृति और परम्परा) के जीवित और सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं। हमसे अधिक हमारे इतिहास को और कोई (विदेशी) नहीं समझ सकता है।

—महान् इतिहासविद् यदुनाथ सरकार
यही अभिमत जयशंकर प्रसादजी का है।

× × ×

ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है...ब्राह्मण सबके लिए अपने को दान कर देता है।

—चाणक्य

× × ×

किसी भी अन्याय का प्रथम में प्रतिवाद करें, प्रतिकार करें, रुख कर खड़े होवें, उससे भी काम न चले तो प्रतिरोध करें, उससे भी काम न चले तब प्रतिशोध लेवें।

—श्यामा प्रसाद मुखर्जी

विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रम : एक

रात्रि की निस्तब्धता को भंग करती हुई, एक कुटिया में से रुदन की ध्वनि आ रही थी। भीतर एक वृद्धा थी जिस के नेत्रों की ज्योति मन्द हो चली थी। उन ज्योति-हीन नेत्रों के भीतर से उष्ण आंसुओं की धार बहाती हुई वह रो रही थी। उसका इकलौता जवान लड़का जो उसके जीवन का एकमात्र आश्रय था, बर्बर शकों के आक्रमणों में मारा गया था। अचानक द्वार खटखटाने की ध्वनि हुई। बुढ़िया ने पूछा, इस अर्द्धरात्रि में कौन है? उत्तर मिला, 'माँ!' मैं हूँ। माँ शब्द मात्र से ही बुढ़िया का हृदय आनन्द से झूमने लगा। भावाकुल दशा में वह द्वार की ओर दौड़ी। एक सुन्दर, इकहरा बदन, दुहरी छाती वाला युवक बुढ़िया का चरण स्पर्श करने लगा। बुढ़िया ने उसे हृदय से लगाकर प्रेमाश्रुओं से अभिनन्दन किया। 'बेटा तू जीवित है?' 'माँ! मैं तेरी सेवा के लिए आया हूँ।' 'पर बेटा, इतने दिनों गुम रहा?' 'नहीं माँ', युद्ध भूमि में व्यस्त रहा? 'बेटा, तेरी आवाज कुछ बदल गई हैं?' हाथ से स्पर्श करते हुए माँ ने पुनः कहा—'तेरा शरीर भी कुछ बड़ा है।' माँ! काल बीतने से कुछ अन्तर हो ही जाता है।' यह कहकर नवयुवक ने बुढ़िया के चरण दबाने शुरू किए। रात्रि भर बुढ़िया की सेवा कर प्रातःकाल नवयुवक ने कहा—'मैं राजदरबार में नौकरी के लिए जा रहा हूँ, संध्या को आऊंगा।' माँ को कुछ सन्देह तो हुआ किन्तु नवयुवक का प्रेम तथा सेवाभाव देखकर उसने यही सोचा कि मेरे अपने पुत्र के सिवा और कोई ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। प्रतिदिन रात्रि को नवयुवक आकर माँ की सेवा करता तथा सूर्योदय होते-होते वह चला जाता। एक दिन बुढ़िया को पता चल ही गया कि वह नवयुवक और कोई नहीं, स्वयं दुःखभंजक, न्यायदर्शी, महाराज शकारि विक्रमादित्य हैं जो रात्रि को भेष बदलकर अपनी प्यारी प्रजाओं के दुःख भंजन के लिए घूमते हैं तथा दुःखियों के आंसू पोंछते हैं। अपना सारा वात्सल्य उस तेजस्वी युवक पर लुटाते हुए वृद्धा ने रून्धे कण्ठ से कहा—महाराज! आप सारे भारत के चक्रवर्ती सम्राट होते हुए भी मेरी जैसी भिखारिन की झोंपड़ी में पधारे तथा स्वयं मेरे पुत्र बनकर मेरी सेवा करते रहे। मैं अपना सर्वस्व देकर भी इस उपकार का बदला नहीं चुका सकती। हे विक्रम! जब तक चाँद और सूरज रहें तेरा नाम अमर रहे। वृद्धा के लुप्त ज्योति

नेत्रों से कृतज्ञता के शीतल अश्रुबिन्दु गिरने लगे। उस वृद्ध माता के आशीर्वाद में स्वयं भारतमाता का अपने इस तेजस्वी पुत्र के लिये आशीर्वाद निहित था। संभवतः उसी के प्रताप से आज तक महाराज विक्रमादित्य भारत की कोटि-कोटि सन्तानों के हृदयदेश पर राज्य कर रहे हैं। विक्रमादित्य नाम में ही कुछ जादू है जो गत 20 शताब्दियों से भारतीयों के हृदय में एक अद्‌भुत प्रेरणा प्रवाहित करता रहा है। भारतीय हृदय के लिये विक्रमादित्य केवल ऐतिहासिक व्यक्ति ही न रह कर राष्ट्रीय जीवन का एक उज्ज्वल ध्येयतारा भी बन गया है। पिछले 1000 वर्षों की पराधीनता की लम्बी विकराल रात्रि में भी उसी प्रकाशमान आदित्य के दर्शन के लिए तरसते हुए ही हम जीवित रहे हैं। श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी के शब्दों में, विक्रमादित्य का तेजस्वी नाम भारतीयों के मानसपटल पर अमिट रूप से अंकित हो चुका है। उसका कारण समझाते हुए वे लिखते हैं—भगवान् परशुराम में दिव्य तेज था किन्तु वे इतने भयानक थे कि जनगण इनसे प्रेम नहीं कर सकते थे। श्रीकृष्ण में देवत्व भी था, वे धर्मरक्षा के लिए कृत संकल्प थे, किन्तु उन्होंने स्वयं ताज नहीं पहना। अशोक ने धर्मरक्षा की किन्तु राज्य तो उसे पहले ही सुरक्षित रूप से बाप-दादा से मिला था। विक्रमादित्य का प्रभाव इन सब से अधिक हुआ क्योंकि वह पूर्ण मानव था। उसने शकों को खदेड़ कर एक शक्तिशाली एकछत्र राज्य का निर्माण किया, उसने साहित्य एवं कला को महान् प्रोत्साहन दिया और धर्म की रक्षा की, सब से बढ़कर दुखियों एवं दीनों का दुःख दूर किया। वह परशुराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा अशोक की स्मृतियों का समन्वय बन कर आया तथा उसने राष्ट्र के हृदय में प्रेम तथा श्रद्धा का एक अलौकिक स्थान बना लिया।

नववर्ष प्रतिपदा का मंगलमय पर्व कितना माधुर्यपूर्ण तथा उल्लासप्रद है। अपने उस गौरवशाली अतीत की स्मृति मात्र से कोटिशः भारतीयों के वक्षस्थल गर्व से फूल उठते हैं, ग्रीवाएं स्वाभिमान से उन्नत हो जाती हैं तथा अपने पूर्व पुरुषों के स्नेह से स्पंदित उनका छोटा सा भावुक हृदय एक बार उस स्वर्ण युग प्रणेता, हूण-शक प्रभृति दुष्टदल-विजेता, नवसंस्थापक, धर्मरक्षक, प्रजावत्सल सम्राट-श्रेष्ठ वीर विक्रमादित्य के पुण्य स्मरण से पुलकित होकर नृत्य करने लगता है। विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रमादित्य कौन हैं? यह विश्व के इतिहासकारों को चुनौती है। आज से 2015 वर्ष पहले भारतीय इतिहास में एक नूतन युग का प्रारंभ करने वाले महाराज विक्रमादित्य अवश्य ही कोई अमित तेजस्वी, महाप्रतापी महापुरुष हुए होंगे। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं। जिस विक्रम का न्याय लोक विश्रुत है, जिसके भूमि में दबे हुए सिंहासन पर अनजाने में बैठ जाने पर गड़रिये का लड़का भी सदा न्याय कर सकता है, जिसके राज्य में प्रजा सर्वाधिक सुखी एवं सम्पन्न थी, जिसकी वैताल पचीसी की कथाएँ आज तक घर-घर में

कही-सुनी जाती हैं, जिसकी प्रशस्तियाँ आज तक मध्य भारत के लोकगीतों में गूंजती हैं, जो महाकवि कालिदास का परममित्र एवं साहित्यिकों तथा कलाकारों का अपूर्व आश्रयदाता था, उस महान् विक्रमादित्य को भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। उनके लिए और कोई राजा, महाराजा कल्पित भले ही हो, पर विक्रमादित्य तो उन सब के लिए एक यथार्थ सत्य है। उनके लिए न केवल वह 2015 वर्ष पूर्व जीवित था अपितु उनके हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में वह आज भी जीवित है। भगवान् राम के पश्चात् रामराज्य का कोई सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उन्होंने देखा है तो वह सम्राट विक्रमादित्य के समय में। जिस संवत् में हमारी जाति की पिछले दो सहस्र वर्षों की कहानी अंकित है। जिस संवत् के अनुसार आज तक हमारे धार्मिक कृत्य होते हैं, जिस संवत् का वर्णन हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में भी पाया जाता है, जिस संवत् के पवित्र नाम का उच्चारण कर हम सारे शुभ संकल्प करते आए हैं, जो केवल पत्थर के शिलालेख पर ही नहीं हमारे हृदय पटलों पर भी अमिट रूप से अंकित हो चुका है, उस महान् विक्रम संवत् के प्रणेता कोई कल्पित विक्रमादित्य हों यह कितना हास्यास्पद है, संवत् का प्रणयन एक जाति की जीवन गाथा में एक अविस्मरणीय घटना होती है। वह युगों तक अपनी छाप छोड़ जाता है। अतः विक्रम संवत् एवं उसके प्रणेता सम्राट विक्रमादित्य का भरत-सुतों की संस्कृति में एक अमर स्थान प्राप्त कर लेना संवत् तथा संवत्-प्रणेता, दोनों की ऐतिहासिकता के पक्ष में सबसे प्रबल प्रमाण है।

कोई भर्त्तृहरि शतक के अमर गायक योगीराज गोरखनाथजी के अमर शिष्य भर्त्तृहरिजी को सम्राट विक्रम का बड़ा भाई मानते हैं। भर्त्तृहरि के संसार से विरक्त हो जाने पर विक्रम ने अवंति का सिंहासन ग्रहण किया तथा पश्चिमोत्तर की ओर से आने वाले शकों को परास्त कर उन्होंने शकारि की उपाधि प्राप्त की। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित हिन्दू संस्कृति अंक में यही मत व्यक्त किया गया है।

पण्डित भगवद्दत्त (रिसर्च स्कालर) का मत है कि ईसा से 56 वर्ष पहले आंध्र प्रदेश के प्रतापी राजा शूद्रक ने विदेशी आक्रमणकारियों को भारत से बाहर धकेल कर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तथा विक्रम संवत् प्रारम्भ किया। पुराणों में सम्मान के साथ विक्रम संवत् को ही कृत संवत् (कृत युग, सतयुग का संवत्) तक कहा गया है।

डॉ. जायसवाल तथा श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के मतानुसार आंध्रवंश के महाराज गौतमी पुत्र सातकर्णि ने प्रथम शती ईसा पूर्व में उज्जैन, मध्यप्रदेश के शक महाक्षत्रप नहपान को परास्त करके विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तथा विक्रम संवत् आरम्भ किया। चूंकि उज्जैन के मालवगणों ने शकों को परास्त करने में उसकी सहायता की थी इसीलिए इसी संवत् का दूसरा नाम मालव संवत् प्रसिद्ध हुआ।

इस मत में संभाव्य सत्य भी है किन्तु एक बात बड़ी विचित्र है। श्री विद्यालंकार तथा श्री जायसवाल, दोनों इसी विक्रमादित्य को शालिवाहन मानते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि शालिवाहन तो जाति से स्वयं शक था। कर्नल टाड के मत में शकराज 'गज' जिसके नाम से गजनी बसा, उसी (गज) का पुत्र शालिवाहन भाग कर भारत आया, उसने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया तथा महाराष्ट्र के तीर्थ पैठण में राजधानी बनाई। इसी शालिवाहन ने शक संवत्सर चलाया जो विक्रम संवत् से 78 वर्ष पीछे है। यह बड़ी दुःख भरी वार्ता है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार ने भारत को विदेशी बर्बर शकों के आक्रमण से मुक्त कराने वाले शकारि विक्रमादित्य के संवत् को मान्यता न देकर, बर्बर आततायियों के स्मारक शक संवत् को राजकीय संवत् घोषित कर दिया है। भारतीय प्रज्ञा के लिए यह एक लांछन की बात है।

20 मार्च, 1958 को
दैनिक 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित

शस्त्र द्वारा रक्षित राष्ट्र में शास्त्र चिन्तन हो सकता है।

—चाणक्य

जहाँ शस्त्र बल नहीं, वहाँ शास्त्र रोते हैं।

—दिनकरजी

स्वयमेव मृगेन्द्रता

सिंह स्वयं अपने बल से ही मृगेन्द्र बनता है।

× × ×

'हमारे पतन का मूल कारण हमारी मानसिक दुर्बलता है। हमारे समक्ष सर्वप्रथम कार्य यही है कि अपनी मानसिक दुर्बलता को समाप्त कर दें।' **—डॉ. हेडगेवार**

× × ×

गाँधीजी की एक पुस्तक है 'आशीर्वाद' जिसमें हर दिन के लिए उनकी हस्तलिपि में एक उद्‍बोधक वाक्य दिए हुए हैं। इस पुस्तक में व्यक्तिगत और सामाजिक सभी समस्याओं का समाधान देने की ताकत है। उसमें वे कहते हैं—एक के पास ईश्वर है, करोड़ के पास शैतान तो क्या एक करोड़ से डरे? फिर उन्होंने कहा—आस्था में निराशा का कोई स्थान नहीं है। **—महात्मा गाँधी**

विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रम : दो

जिस समय हमारा विक्रम संवत् शुरू होता था और विक्रम संवत् से पहले सृष्टि संवत् भी इसी से शुरू होता था। ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रंथ के अनुसार—

चैत्रे मासे जगद ब्रह्मा संसर्ज प्रथमेऽहवि,
शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।

अर्थात् चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की।

सृष्टि इसी से शुरू हुई। इसलिये कोई तमाशा नहीं है जब चाहे कोई वर्ष शुरू कर दे। अरे, यह सृष्टि के प्रारंभ का दिन है। ब्रह्मा ने सृष्टि प्रारम्भ की और हमारा सृष्टि संवत् चल रहा है। लगभग दो अरब वर्ष से सृष्टि संवत् है। एक अरब 97 करोड़ और 987 ऐसा करके सृष्टि संवत् हमारा है। तो ये सृष्टि संवत्। सतयुग संवत् इसी से। त्रेता संवत् इसी से। द्वापर संवत् इसी से। कलि संवत् इसी से। युधिष्ठिर संवत् इसी से। कलियुग में पुनः सम्राट् नरवीर विक्रमादित्य ने 2035 वर्ष पहले, बर्बर-शकों को परास्त करके पुनः उसी प्राचीन दिवस को यश देते हुए उन्होंने विक्रम संवत् प्रारम्भ किया। ये शक लोग कौन थे? चीन के उत्तर में एक तारीम नदी है। उस तारीम नदी के काठे (किनारे) में बहुत ही बर्बर जाति के लोग बसते थे जिनको शक कहते थे। बहुत बर्बर। वे बस्तियों को घेर लेते। चारों ओर आग लगा देते और स्त्रियों और बच्चों को मारते। लूट-पाट करना, आग लगाना, नाश करना, यही उनका काम-धंधा था। चीन भी उनसे तंग था। चीन उनसे इतना तंग था कि शकों के आक्रमणों से बचने के लिये दुनिया की सबसे बड़ी दीवार दीवारे-चीन, जो दुनिया का अजूबा मानी जाती है, को उसने इसीलिये बनाया कि उन शकों से बचा जा सके। फिर भी शक उनको तंग करते थे। वे शक लोग वहाँ से बढ़ते-बढ़ते सिक्यांग की तरफ आये। जिसे आज चीनी तुर्किस्तान कहते हैं। वहाँ उन्होंने बहुत लूट-खसोट मचायी। उसके बाद वे ईरान की तरफ आये। ईरान के राजा को उन्होंने एक पत्र लिखा। यदि अपनी प्रजा की भलाई चाहते हो, और अपनी राजधानी को लूट-पाट से, खून-खराबे से, आगजनी से बचाना चाहते हो

तो अपने सिर को काटकर एक थाल में परोसकर हमारे पास भेज दो। अब सोचिये, ऐसा प्रस्ताव कोई किसी राजा को कर सकता है? उन्होंने ऐसा भयानक प्रस्ताव उसको किया और चेतावनी दी—अगर तू ऐसा नहीं करेगा, तो हम तुझे मारकर तेरी खोपड़ी को काटकर, और तेरी खोपड़ी का गुद्दा निकाल करके उस खोपड़ी का प्याला बनाकर तेरा ही खून पीयेंगे। यह इतिहास की बहुत ही दुःखदाई सचाई है कि उन शक लोगों ने उस ईरान के राजा को मारा। राजधानी को लूटा-खसोटा, स्त्री-पुरुषों का नाश किया, कुएं भर गये लोथों से और उस राजा को मारकर उसकी खोपड़ी में उसी का खून डालकर पीया। ऐसे बर्बर लोग भारत पर आक्रमण करने आये। एक शक राजा जब कश्मीर की ओर से नीचे उतर रहा था तो जम्मू से कश्मीर जाते हुए रास्ते में पीर पंजाल की पहाड़ियाँ हैं। वहाँ वैष्णवदेवी से पहाड़ियाँ दिखती हैं। फिर पन्हिल दर्रा है, पास है। फिर टर्मिनल बनाई गई है। उस टर्मिनल से बस जाती है। उन पहाड़ियों से जब मिहिरकुल नाम का शक राजा उतर रहा था तो उसने जिंदगी में पहली बार एक हाथी को देखा। हाथी होता ही नहीं उनके देश में। हाथी को देखा तो हाथी का पांव अचानक पहाड़ी से फिसल गया। पांव फिसल जाने से हाथी नीचे गिरा। हाथी ऐसे गिरा कि दो तिरछी पहाड़ियों के ढलान के भीतर गिरा और नीचे जाकर पहाड़ियाँ इतनी संकरी हो गयी थी। जिनके भीतर वह पीठ के बल गिरा। हजार प्रयास करने के बाद भी वह अपने शरीर को सीधा नहीं कर सका। सीधा हुए बिना वह खड़ा नहीं हो सकता। पीठ के बल गिरा और नीचे बहुत संकरी जगह थी जिससे वह उठ नहीं सकता था। उस अवस्था में वह—सूंड मार रहा था। पूंछ मार रहा था। चारों पांव छटपटा रहा था। उठने की कोशिश कर रहा था, चिंघाड़ रहा था। मिहिरकुल को यह देखकर बड़ा आनंद आया। वाह! ऐसा मृत्यु संगीत मैंने जीवन में कहीं नहीं सुना। कई दिन तक वह हाथी रोता रहा, चिंघाड़ता रहा और अंत में हाथी की बड़ी दुःखदायी मृत्यु हो गई। उस शक राजा मिहिरकुल को यह दृश्य बड़ा रोचक लगा। उसने बाद में वहाँ से उतर कर आगे विजय करते हुए....विजय करते हुए क्या? बस्तियों को घेर लेना, चारों ओर आग लगा देना। भागने वालों को बर्छों से, भालों से मारना। स्त्री-पुरुषों की बड़ी दुर्गति करना, और बहुत भयंकर प्रकार के पापाचार करना। यही उसका तरीका था। तो जब वह नीचे उतर रहा था तो बस्तियों को लूटता-खसोटता मथुरा तक आकर उसने नाश किया और बहुत उजाड़ दिया सारे देश को। तब उसने एक सौ हाथी अपने विजय किये हुए क्षेत्र में से ले जाकर उस पहाड़ी की उसी जगह पर जाकर बारी-बारी से उनको गिराया और एक-एक हाथी को गिराने और 5-5, 6-6 दिन तक उनका मृत्यु संगीत सुनने में उसको वर्ष लग गया। वह वहाँ बैठा हुआ उनका मृत्यु संगीत सुनता रहा। उनकी मृत्यु की चिंघाड़ सुनकर आनंदित होने वाले, दूसरों को दुःख देकर, दूसरों को सताकर आनंद मनाने वाले ऐसे नर-

पिशाच, शरीर तो मनुष्य का है पर प्रकृति पिशाच की है। दूसरों को सताना, दूसरों को तड़पाना और उसमें सुख मानना। ऐसे शक लोग बढ़ते-बढ़ते पहुँच गये उज्जैनी नगर के पास। अवन्तिका के पास। वहाँ पर एक मालव गणराज्य था। आज से हम 2035 साल पहले की बात कर रहे हैं। उससे दो सौ साल पहले जब सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था तो वह मालव गणराज्य पंजाब में था। आप जयशंकर प्रसाद का नाटक पढ़ें—चन्द्रगुप्त। उसमें आपको संकेत मिलेगा। इतिहास के ग्रंथ देखें उनमें आपको संकेत मिलेगा मालव गणराज्य का। अभी पंजाब के दो भाग हैं—माझा और मालवा। मालव वहाँ थे। उन्होंने सिकंदर की सेनाओं की खूब दुर्गति की थी, ऐसी मार दी थी कि सिकंदर परेशान हो गया था। भाग गया था। इसलिये वे मालव लोग, वह सारा का सारा जो पेप्सु का इलाका है वह मालवा का इलाका है। अमृतसर से उधर माझा, अमृतसर से इधर मालवा और ये मालवे के वीर बड़े बहादुर थे। इनके नाम पर पंजाब में कई नगर अभी भी हैं। एक है मालेर-कोटला। मालेर कोटला का नाम था मालवेर-कोटला। मालव लोगों का किला। एक है मनोद, उसका नाम था मानवोदय। इस तरह से मालवों का यश यहाँ भी था। उसके बाद किसी ऐतिहासिक उथल-पुथल से बढ़ते-बढ़ते चले गये मध्यप्रदेश की तरफ और जाकर उज्जैन के आस-पास बस गये थे। आज से 2035 वर्ष पहले जब शकों का हमला हुआ तब मालव गणराज्य वहाँ था। वहाँ उज्जैन के पास वह गणराज्य था। गणराज्य यानी गणतंत्र और उस गणतंत्र का अध्यक्ष था वीर विक्रमादित्य मालव गणाधिपति। मालवगण का अधिपति। लोगों ने सम्मान से उसको राजा विक्रमादित्य लिखना शुरू किया। लेकिन वो वास्तव में मालव गणाधिपति था। जैसे भगवान कृष्ण ने कभी राज्य नहीं किया। पर सब लोग आदर से कृष्ण महाराज, कृष्ण महाराज कहते ही हैं। उन्होंने राज्य ही नहीं किया तो महाराज का प्रश्न ही क्या? वह क्या थे? वृष्णि गणराज्य था द्वारिका में। भगवान श्री कृष्ण उस वृष्णि गणराज्य के अध्यक्ष थे। इसलिये गणराज्य था। इस तरह से बुद्ध के पिता को राजा शुद्धोधन, शुद्धोधन राजा नहीं था। वहाँ पर एक गणराज्य था। उस गणराज्य का अध्यक्ष था। इसलिये भारत के प्राचीनकाल में गणराज्य थे और मालव गणराज्य का अध्यक्ष था विक्रमादित्य, वीर पुरुष। वह गया महाकाल के मंदिर में। उस नर केसरी विक्रमादित्य ने महाकाल के मंदिर में जाकर और अपनी खड्ग निकाल करके अपनी भुजा का रक्त शंकर भगवान् को चढ़ा करके प्रतिज्ञा की—शंकर भगवान्! लोग आपका जलाभिषेक करते हैं मैं आपका रक्ताभिषेक कर रहा हूँ इस प्रतिज्ञा के साथ कि अपने शरीर की अंतिम रक्त बूंद भी इस राष्ट्र पर आयी हुई विपदा को निरस्त करने में लगा दूंगा और जब तक इन शकों को इस देश से खदेड़कर बाहर नहीं फेंक दूंगा तब तक मेरी अपराजित खड्ग पुनः म्यान में नहीं जायेगी। यह प्रतिज्ञा करके वह नरवीर निकला। देश के लिये प्राणोत्सर्ग

करने के लिये वीरों की टोलियाँ जमायी और इन बर्बर शकों को, नर-पिशाचों को खदेड़ना शुरू किया और इनको खदेड़ते-खदेड़ते इसने हिन्दूकुश के पार फेंक दिया। जिसको हम लोग सिंधुद्वार कहते थे उसको मुसलमानों ने अपने आक्रमण के बाद दर्रा खैबर कहना शुरू किया। दर्रा खैबर नाम का एक नगर अरब में है। आपको लज्जा आनी चाहिये अरब के नगर के नाम पर उसको दर्रा खैबर नाम दे दिया। उसका नाम सिंधुद्वार था। उसके पार खदेड़ दिया और अफगानिस्तान में, काबुल में अंगूर की बेलों के निकुंजों में जाकर उसकी सेनाओं ने विश्राम किया। उसने कहा, हमने पश्चिमोत्तर की सीमा को विजित कर लिया है। अब पूर्व की ओर हम लोग बढ़ेंगे। पूर्व की ओर आराकान, बर्मा तक जाकर उसने विजय किया।

सच्चे अर्थ में देश स्वाधीन तब होगा जब देश का बच्चा-बच्चा ऋणमुक्त हो जाय चाहे मेरी प्रजा में से किसी को किसी का ऋण देना हो, एक पैसा भी जिसको चुकता करना हो। जो जिसका ऋणी होता है उसकी आंखें सदा साहूकार के सामने झुक जाती है। वह गुलाम रहता है। चाहे किसी विदेशी का राज्य न हो, लेकिन उसके ऊपर किसी का, उसके ऊपर धन का राज्य बना हुआ है इसलिये वह उसका गुलाम है, उसके सामने झुकता है। विक्रमादित्य ने कहा, मेरी प्रजा में कोई भी किसी का ऋणी नहीं रहेगा। जिसको जितना ऋण देना हो आकर के हमारे दरबार में बताओ, हमारे कार्यालयों में बताओ, राजकोष से सबका ऋण चुकता कर दिया जायगा। सम्राट् विक्रमादित्य ने राज्यकोष से बच्चे-बच्चे का, व्यक्ति-व्यक्ति का ऋण चुका दिया। उसने कहा, अब सच्चे अर्थ में मेरी प्रजा भयमुक्त है, ऋणमुक्त है, आपदामुक्त है। अब मैं इस परम पवित्र नववर्ष प्रतिपदा के दिन संवत् संस्थापित करता हूँ। लोगों ने कहा, इसका नाम विक्रम संवत् रखो। उसने कहा, नहीं!

विक्रम संवत् मत रखो! मैं कौन हूँ? मैं तो एक गणराज्य का अध्यक्ष हूँ। इस संवत् का नाम कृतसंवत् है। विक्रमादित्य ने अपने समय में इसका नाम विक्रम संवत् नहीं रखा। उसने कृतसंवत् नाम रखा। कृत माने सत्ययुग का समय। इस देश में पुनः सत्ययुग आ गया है। सत्ययुग कैसे आता है? तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा— कलि शयानो भवति। सोये हुए व्यक्ति के लिये कलियुग आया है, जो जम्हाई ले रहा है उसके लिये द्वापर और उत्तिष्ठत् त्रेता भवति जब खड़ा हो जाता है उसके लिये त्रैतायुग आ जाता है। जब आदमी चलने लगता है। तो उसका नाम सत्ययुग हो जाता है। जो राष्ट्र सोया हुआ है वह कलियुग में है। जो राष्ट्र जम्हाई ले रहा है वह द्वापर में है। जो राष्ट्र उठ करके खड़ा हो गया है वह त्रेता में है। जो राष्ट्र वेग से चलने लगा है गतिमान हो गया है वह राष्ट्र सत्ययुग में है। इसलिये उसने कहा, इन पापी-नराधम शकों को निरस्त करने के लिये पूरा राज्य खड़ा होकर वेग से बढ़ा है। शत्रु को खदेड़ करके बाहर फेंक दिया है इसलिये यह सत्ययुग है। इसलिये कृतसंवत्

नाम रखा। कृतसंवत् नाम चला। कुछ अवधि पश्चात् लोगों ने उसको परिचय करने के लिये लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी में इसका नाम रख दिया गया मालव गण संवत्। क्योंकि मालव गणराज्य का संवत् था। इसलिये मालव गण संवत्। और 8-9वीं शताब्दी में यशोधर्मा ने जब पुनः हूणों को परास्त किया। उसने प्राचीन संवत् को लोगों को परिचय देने के लिये कहा—विक्रम संवत्। इसको सम्राट् विक्रमादित्य ने संस्थापित किया, इसलिये विक्रम संवत् और विक्रमादित्य ने अपने समय में यह नाम नहीं रखा। बाद के लोगों ने श्रद्धा से उसको नाम दिया विक्रम संवत्। क्योंकि विक्रमादित्य ने अत्यंत विनम्रता से कहा कि यह मेरा पुरुषार्थ नहीं है पूरे राष्ट्र का पुरुषार्थ है। मैं राष्ट्र का प्रतिनिधि हूँ। मैं इस गणतंत्र का एक प्रतिनिधि-मात्र हूँ।

आज के दिन विक्रमादित्य ने नव-संवत्सर स्थापित किया। सच्चे अर्थ में वैभव का युग कैसा होना चाहिए? इसकी कल्पना मिलती है इस विक्रमादित्य के संवत्सर से। वह इतने से संतुष्ट नहीं हो गया था।

वह रात को वेष बदल करके निकलता था और गुप्त रूप में जाकर देखता था कि मेरे राज्य में कोई दुःखी तो नहीं है। किसी की कुटिया से रोने की आवाज तो नहीं आती। किसी के घर में बच्चे बिना दूध पीये सो तो नहीं गये हैं। बच्चे बिलखते तो नहीं हैं अन्न के बिना। वह घूमता था। एक कुटिया से एक बुढ़िया के रोने की आवाज आ रही थी। विक्रमादित्य ने पूछा, माँ! क्या बात है? तू क्यों रो रही है रात्रि के अंधेरे में। बुढ़िया ने कहा, मेरा एक नौजवान बेटा विक्रमादित्य की सेना में भरती हुआ था। वह लड़ने के लिये पश्चिमोत्तर की तरफ गया था। दस वर्ष हो गये। मेरा नौजवान बेटा लौटा नहीं है। उसी के वियोग में रो रही हूँ। मेरी आंखों पर मोतिया छा गया है। मैं देख नहीं सकती हूँ ठीक से। पर उस बच्चे के सिवा मेरा कोई सहारा नहीं था। इसलिये उसके वियोग में रोती हूँ। विक्रमादित्य ने उसके चरणों को पकड़ करके माथा उसके चरणों में रख दिया। कहा, माँ! तू भूल गयी। तू पहचानती नहीं है। मैं ही तो तेरा बेटा हूँ। मैं लड़ने के लिये गया था विक्रमादित्य की सेना में। हम विजयी होकर लौट करके आये हैं माँ। बताओ, मेरे लायक क्या सेवा है? माँ ने टटोल करके देखा। माँ ने कहा, नहीं बेटा! तू मेरा बेटा नहीं है। मेरा बेटा थोड़े हलके शरीर का था। तेरा डील-डौल कुछ बड़ा है। माँ! दस वर्ष हो गये। दस वर्ष में क्या डील-डौल बड़ा नहीं होता है। हम लोग खूब बहादुरी से लड़े। हम विजयी हुए। मैं तेरा बेटा हूँ और न मानते हुए भी रातभर माँ की सेवा करता रहा। उसने सुबह उठकर कहा—माँ! मेरे को राज दरबार में कुछ काम है। शाम को मैं फिर आ जाऊंगा। चला गया। शाम को फिर आ गया। उसकी सेवा करता रहा। पाँच-सात रोज के बाद उस बुढ़िया को संकेत मिल गया। यह जो मेरी सेवा करने आता है यह तो मालव गणाधिपति, सम्राट् विक्रमादित्य

है। तब तो रात को विक्रमादित्य के आने पर अपने हृदय से विक्रमादित्य को खूब आशीर्वाद दिया। दोनों आंखों में गंगा-जमुना की धार बहाती हुई उस माँ ने कहा कि, ऐ विक्रम! तेरे जैसा पुरुषार्थी, तेरे जैसा वीर, तेरे जैसा प्रतापी राजा, सारे भारत का स्वामी होकर भी मेरे जैसी एक निर्धन बुढ़िया की सेवा करने के लिये मेरे पास आता है। ऐ बेटा! तू मेरा बेटा बन करके आया है, मैं आशीर्वाद देती हूँ, जब तक चन्द्र-सूर्य-तारागण रहेंगे तेरा यश संसार में अमर रहेगा। बच्चा-बच्चा तेरे यश का तराना गायेगा। ऐ बेटा! तेरे यश को कोई मिटा नहीं सकेगा। उस बुढ़िया के आशीर्वाद में मानो साक्षात् भारतमाता का आशीर्वाद था और आज सचमुच पानी भरने वाली पनिहारिनें, भैंसें, भेड़-बकरी चराने वाले चरवाहे, खेतों में काम करने वाले किसान, घरों में रहने वाले, नगरों में, वनों में रहने वाले सब लोगों की जिह्वा पर विक्रमादित्य का नाम है। बच्चा माँ से कहता है, दादी से कहता है मुझे विक्रमादित्य की कहानी सुनाओ। विक्रमादित्य का सिंहासन देश के करोड़ों-करोड़ों लोगों के हृदयों में पिछले 2035 वर्षों से स्थापित हो चुका है। उस सिंहासन को कोई लूट नहीं सकता।

वह विक्रमादित्य एक बार रात्रि को घोड़े पर जा रहा था प्रजा का हाल जानने। एक खेत के भीतर से गया। खेत की रखवाली के लिये दो-चार लोग बैठे थे। उन्होंने कहा, ऐ! किधर जाता है? क्यों क्या बात है? अंधा है दिखता नहीं है। हल चलाया हुआ खेत है। बीज बोया हुआ है उसके भीतर से घोड़ा दौड़ाकर ले जा रहा है? उसने कहा, भूल हुई। भूल क्या हुई! गाँव का नियम है जो जोते हुए खेत के भीतर से चलेगा, घोड़ा दौड़ायेगा उसको पचास कोड़ा दण्ड मिलेगा। विक्रमादित्य घोड़े से उतरा और अपनी पीठ नंगी कर दी। पचास कोड़े खा लिये। यह था न्यायप्रिय विक्रमादित्य। जो सदा न्याय को नमस्कार करता है। मेरी प्रजा ने कुछ नियम बनाये है। मेरे सम्राट् होने का मतलब यह नहीं है कि मैं जो मरजी धांधली करता रहूँ, मैं जो मरजी अपराध करता रहूँ और कोई बोले तो उसको उठाकर मीसा में बंद कर दूं। डी. आई. आर. में बंद कर दूं, सीखचों में डाल दूं और देश के ऊपर इमरजेंसी लागू कर दूं। न्याय का सम्मान करने वाला वह विक्रमादित्य था, उसकी हजारों ऐसी गाथाएं आप सब जानते हैं।

आपने उसके न्याय की वह कथा अवश्य सुनी होगी। उसके दरबार में स्त्रियाँ एक बच्चे पर झगड़ा करती हुई आयीं। एक ने कहा, बच्चा मेरा है, दूसरी ने कहा—बच्चा मेरा है। बच्चा एक स्त्री का था। दूसरी कुलटा जो थी उसने क्या किया? उसका अपना बच्चा था नहीं। उसने इसका बच्चा छीन लिया था ताकि वह निपूती हो जाय और खुद इस बच्चे के साथ मनमानी करे। तो विक्रमादित्य के दरबार में यह मामला आया। दोनों अपना-अपना पक्ष कहने लगीं—बच्चा

मेरा है, मेरा है। विक्रमादित्य का अनोखा न्याय था। विक्रमादित्य ने कहा, दोनों ही बच्चे को अपना कहती हैं। तो विक्रमादित्य ने मंत्री को कहा, उठो, दोनों को तलवार से आधा-आधा काट करके बांट दो। तलवार उठाकर दो टुकड़े कर दो और दोनों को बांट दो। दोनों ही तो अपना कहती हैं! ज्योंही तलवार उठाना था कि जो सच्ची माँ थी वह हाहाकार कर उठी, ईश्वर के वास्ते ऐसा मत करो। मेरी आंखों के सामने मेरे कलेजे के टुकड़े को मत काटो। बेशक किसी दूसरे को दे दो लेकिन काटो मत। दूसरी जो कुलटा थी वह मन ही मन बड़ी प्रसन्न हो रही थी। विक्रमादित्य तुरंत समझ गये। यह तो उनकी परीक्षा थी। न्याय का ढंग था उनका। उन्होंने बच्चे को माँ को दिया और दूसरी को खूब दण्डित किया।

विक्रमादित्य के सिंहासन की कथा आपने सुनी होगी। प. पू. डॉ. जी का शरीर शांत होने के बाद प. पू. गुरुजी ने सरसंघचालक का पद का दायित्व लिया। उन्होंने उसी विक्रमादित्य की कथा को सुनाया। प्रथम भाषण में ही। विक्रमादित्य का सिंहासन एक टीले में दबा हुआ था। उस गाँव में लोगों को कुछ भी न्याय करवाना होता था तो न्याय ठीक से नहीं होता था। एक चरवाहे का लड़का था। लोग उसको कहते थे। वह उस टीले पर बैठकर जो न्याय करता था वह सबको स्वीकार होता था। बिल्कुल शुद्ध न्याय करता था टीले पर बैठ करके। तो उस टीले पर बैठकर न्याय करने से उसका न्याय ठीक होता था। वैसे कुछ न्याय करता तो न्याय गलत होता। बाद में खुदाई में देखा गया उस टीले के नीचे विक्रमादित्य का सिंहासन दबा हुआ था। हजारों वर्षों के बाद जो सिंहासन दब गया था, उस पर टीला बन गया था उस टीले पर बैठने वाला गडरिये का बच्चा भी न्याय ही करता था। प. पू. गुरुजी ने सरसंघचालक का पद संभालते समय कहा कि गडरिये का बच्चा भी विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर, उस टीले पर बैठकर न्याय ही करता है। उन्होंने कहा—मैं तो संघ के सरसंघचालक पद के योग्य नहीं हूँ लेकिन जैसे गडरिये का बच्चा भी विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर न्याय ही करता है तो विक्रमादित्य के इस पावन, इस विक्रम संवत् के दिन जिनका जन्म हुआ उन प.पू.डॉ.साहब के द्वारा संस्थापित संघ के इस पद को, जो मुझे सौंपा गया है उनके द्वारा प्रतिष्ठित इस पद पर बैठकर शायद मुझ गडरिये के बच्चे से न्याय ही होगा। ऐसा प. पू. गुरुजी ने अपने बारे में कहा है। ऐसा सम्राट् विक्रमादित्य का अलौकिक यश था और वह यश अमर यश है। अरब में, अरबी भाषा में विक्रमादित्य की स्तुति मिलेगी।

एक पुस्तक है, इराक सरकार ने छपवायी है 'सेअरूल ओकुल'। कविता के बाग की सैर। लोगों ने चुनौती दी, अरब को, इराक को, अरब-अरबी भाषावाले देशों को कि आप जितनी कविता, साहित्य अरबी का बताते हैं वह इस्लाम के बाद का बताते हैं। क्या इस्लाम के पहले अरब देश नहीं था। या अरबी कविता नहीं थी।

यदि थी तो उसके नमूने कहाँ हैं? इराक सरकार ने सारे संसार से अपील की, जिसके पास पुरानी अरबी कविता के जो नमूने हों, वह हमें देवें। हम उसको बड़े से बड़ा पुरस्कार देवेंगे। अरबी कविता के बहुत से नमूने, जो इस्लाम से पूर्व के थे, नष्ट कर दिये गये इस्लाम के आने के बाद। लेकिन कुछ नमूने इस तरह से बचे थे कि जो वहाँ का काबा शरीफ, मक्का में जो बड़ा मंदिर, काले रंग के पत्थर के देवता, जिसको मक्केश्वर महादेव कहते हैं, वह वास्तव में विशाल शिवलिंग था। अभी भी वह शिवलिंग ही है। उसको काबा कहकर पूजा जाता है। उसके इर्द-गिर्द 360 और मंदिर थे। बीच में बड़ा देवता था और उसमें शिवरात्रि के अवसर पर बहुत बड़ा कवि-सम्मेलन होता था। उस कवि-सम्मेलन में जो सर्वश्रेष्ठ कवितायें होती थी उन कविताओं को लेदर के स्क्रोल पर, चमड़े की पट्टियों पर, सोने के अक्षरों से खुदाई करके उस मंदिर में टांगा जाता था। वह लेदर स्क्रोल जो है वह बड़ी कीमती वस्तु हो गई। जैसे तिब्बत के थंका, तिब्बत के मंदिरों में टांगने वाले चित्र, बड़ी दुर्लभ चीज हो गई। हजारों रुपयों में एक थंका बिकता है। इस तरह से अरबी के स्क्रोल जो मंदिर में टांगे जाते थे, जिसमें सर्वश्रेष्ठ कविता लिखी जाती थी, सोने के अक्षरों में वह हजारों रुपयों में, कभी-कभी लाखों रुपयों तक में एक-एक बिकता था और वे कुछ लोगों के प्राइवेट कलेक्शन में थे। कुछ लाइब्रेरियों में भी थे। कुछ अध जले आधे नष्ट किए हुए भी थे। उन सबको इकट्ठा करके और इराक सरकार ने एक ग्रंथ का संपादन शुरू किया। उस ग्रंथ के संपादन के समय जब ग्रंथ का संपादन हो रहा था सन् 1963 में मैं यूरोप के प्रवास से लौटते समय इराक में बगदाद गया। उस ग्रंथ का मैंने अवलोकन किया। अबुल हिक्म ने एक कविता में कमाल कर दिया। वह कहते हैं—अल्लाओं के अल्लाह महादेव! जीवन में आदमी ने कितना भी गुनाह किया हो, एक बार सच्चे हृदय से आपकी चरण-शरण में आ जाय तब आप उसके सब गुनाह माफ कर देते हैं। वह कहता है—हे अल्लाओं के अल्लाह महादेव! मैं आपकी चरण-शरण में आता हूँ। मेरे गुनाह माफ करें। फिर कहते हैं—अल्लाओं के अल्लाह महादेव! अगर जीवनभर में मैंने कोई पुण्य कमाया हो, सबाब कमाया हो, तो उससे मेरी एक मनोकामना पूरी कर दो। वह मनोकामना क्या है? वह कहते हैं—हे महादेव! आपने मेरे को धन-जन-परिवार दिया, बड़ी अच्छी नेक संतानें दी, बड़ी लम्बी उम्र दी और बड़ी अच्छी कवित्व शक्ति दी। हे महादेव! मेरा सबकुछ छीन लो, मेरा धन, जन-भवन-परिवार छीन लो, मेरी नेक, आज्ञाकारी संतानें छीन लो, मेरी कवित्व शक्ति छीन लो और मेरी सारी लंबी उम्र छीन लो और मेरा सब कुछ छीनकर इसके बदले मुझे दे दो सिर्फ एक दिन के लिये भारत का वासा। मैं एक दिन भारत में जी सकूं। यह मेरी मांग है। यही मेरी मुराद है। मैं अपनी आंखों से वेद और गीता जैसे दर्शन के देश का दर्शन कर सकूं, राम और कृष्ण के देश का

दर्शन कर सकूं, गंगा-यमुना की धूलि को उठाकर अपनी आंखों पर चढ़ा सकूं, मैं जिंदगी निहाल कर जाऊं। इसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। यह कविता मैं नोट करके लाया और मैंने दिल्ली में, बाबू युगलकिशोर बिड़ला, जो बिड़ला बंधुओं में सबसे बड़े थे, उन्होंने एक बार पूछा, कुछ रोचक प्रसंग सुनाइये, तो मैंने उनको यह बताया कि इराक से यह एक चीज मैं लाया हूँ। तो वह सुनते ही उछल पड़े। उनकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। कहते हैं इस्लाम के पैगम्बर के चाचा भारत में एक दिन जीने के लिये तरसते थे।

भारत की इतनी स्तुति करते थे। उन्होंने कहा, तुरंत इसको एक बड़े संगमरमर की पट्टी पर खुदवाकर के दिल्ली के बिड़ला मंदिर में लगवा दिया जाय। तब से वह बिड़ला मंदिर में लगी हुई है। ऊपर मूल अरबी में कविता, नीचे नागरी लिपि में कविता और उसके नीचे हिन्दी में अर्थ, नीचे पुस्तक का नाम और पृष्ठ संख्या 8 एक कालम में दी हुई है।

इसी तरह से विक्रमादित्य के बारे में स्तुतियाँ, विक्रमादित्य की स्तुति में कहा—हे विक्रमादित्य! जब हम लोग जाहिल थे, हम लोग अज्ञानी थे। जब हमें कोई अक्ल नहीं थी। मवेशियों की तरह, पशुओं की तरह रहते थे। हमें धर्म-कर्म का ज्ञान नहीं था। जब हमें साहित्य का कोई ज्ञान नहीं था। तब, हे विक्रमादित्य! तू सूर्य की तरह चमकता था हिंद में। तुमने हमारी भलाई के लिये बड़े-बड़े विद्वान् हमारे देश में भेजे थे जिन्होंने हमें गणित सिखाया, ज्योतिष सिखाया। जिन्होंने हमें अदब सिखाया अर्थात् कविता सिखायी। जिन्होंने हमें औषध विज्ञान, दवा-दारू की हिकमत का काम सिखाया। ये सब चीजें हमने हिन्दुस्तान से सीखी हैं। यह आपकी बरकत है आप इतने उदार थे। आपने हम जाहिलों को, हम बिल्कुल गिरे हुए, पशुतुल्य जीवन जीने वालों को आपने इस तरह से उठाकर हमें योग्य बनाया। ये श्रद्धा के फूल अरबी कविता में विक्रमादित्य के प्रति अभी भी मिलते हैं।

इसी तरीके से तिब्बत में विक्रमादित्य की स्तुतियाँ, चीन में विक्रमादित्य की स्तुतियाँ। ईरान में एक पुस्तक है 'अराजीबोजी'। अराजीबोजी क्या है? अराजीबोजी है 'अराज' राजा भोज की कथाएं। उसमें राजा भोज की और विक्रमादित्य की कथाएं हैं। वह पुस्तक इतनी प्रचलित है जो भी हिन्दुस्तान से व्यक्ति जाता है उससे कहते हैं विक्रमादित्य की कथा बताओ। विक्रमादित्य की कहानियाँ बताओ। विक्रमादित्य की कहानी की किताब दो। इतना विक्रमादित्य का यश पूरे एशिया में फैला हुआ। उस विक्रमादित्य का स्मरण आज के पुनीत दिन पर हम करते हैं।

भारत माता के अमर सपूत स्वातंत्र्य-गौरव महाराणा प्रताप

सूरमाओं के देश राजस्थान का स्मरण होते ही आँखों के सामने जलती बालू वाले महामरुस्थल का चित्र आ जाता है। लगभग डेढ़ लाख वर्गमील में फैली हुई तप्त रेत और नाचती मरीचिका में पौरुष भरी लच्छेदार मूँछों वाले, बहादुरी में शेरों को शरमाने वाले वीर शिरोमणि पैदा हुए। राजपूत साक्षात् फौलाद, पिघला तो पानी, जमा तो वज्र।

चप्पे-चप्पे में पानीपत, कण-कण में बलिदान तथा जर्रे-जर्रे में जौहर की गूंज लिए, राजस्थान अपने शौर्य का आप ही स्मारक बना हुआ है। उसके मध्य में चित्तौड़, विंध्याचल की भुजा, पारियात्त की शक्ति का प्रतीक अरावली के माथे के तिलक के समान अपने हृदय में स्वातंत्र्य सदाबहार स्मृतियों को संजोये हुए खड़ा है। स्वातंत्र्य के इस मन्दिर को वीरों ने अपने हृदय रक्त से सींचा है और वीरांगनाओं ने अपने सुहाग सिन्दूर से संवारा है।

धन्य है राजस्थान, सौ बार धन्य है मेवाड़, हजार बार धन्य है अरियों के चित्त को तोड़ देने वाला चित्तौड़ दुर्ग, लाख बार धन्य है वहाँ का सिसोदिया वंश जिस का यश बाप्पा रावल, रावल खमान, समर सिंह, रानी पद्मिनी, राणा सांगा इत्यादि के पावन चरित्रों में आज तक गूंजता है, पर कोटिशः धन्य है बाप्पा रावल के कुल की अक्षुण्ण कीर्ति की उज्ज्वल पताका, रजपूती आन एवं शौर्य का पुण्य प्रतीक, महाराणा सांगा का पावन पौत्र, स्वातंत्र्य की ज्वाला पर सर्वस्व समर्पण करने वाला मेवाड़ का सिंह महाराणा प्रताप, जिन का ज्योतिर्मय बलिदान युगों तक मानवता को मुक्ति का उज्ज्वल पथ दिखाता रहेगा। कविवर जयशंकर प्रसाद ने उस वीरवर के यश में गाया है—

कहो कौन है? आर्यजाति के तेज सा,
देश भक्त जननी का सच्चा पुत्र है।
भारतवासी! नाम बताना पड़ेगा।

मसि मुख में ले अहो!
लेखनी क्या लिखे!
उस पवित्र प्रातः
स्मरणीय सुनाम को।
नहीं, नहीं, होगी
पवित्र यह लेखनी,
लिख कर स्वर्णाक्षर
में नाम 'प्रताप' का।
तुम अपने प्रताप को
विस्मृत हो गए।
अरे कृतघ्न बनो मत
उस को भूल के।
यह महत्त्व मय नाम
स्मरण करते रहो।

यह तो आधुनिक काल के कवि की श्रद्धांजलि हुई। स्वयं प्रताप के युग में अकबर के नवरत्नों में सर्वमान्य, अकबर के संरक्षक बैरमखान के पुत्र, स्वयं अकबर की सेनाओं के सेनापति खानखाना अब्दुर्रहीम, जो अरबी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे, उन्होंने स्वयं अकबर का सेनापति होते हुए स्वातंत्र्य गौरव महाराणा प्रताप के यश में लिखा—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण,
अमर विसंभर ऊपरे रखियो निहचो राण।

अर्थात्, हे राणा, धर्म सदा धरती पर रहेगा और धर्म के कारण धरती भी टिकी रहेगी लेकिन खुरसाण (मुगल) वंश का राज्य सदा रहने वाला नहीं है, यह नष्ट हो जायेगा। इसलिए हे महाराणा! अमर विश्वंभर महादेव पर अपना निश्चय दृढ़ रख कर धर्म के लिए युद्ध करते जाओ।

इस श्रद्धांजलि से प्रताप का सच्चा गौरव प्रकट होता है, जब शत्रु का सेनापति उसका यश गाता है। स्वयं अकबर के दरबार में बैठा हुआ कवि पृथ्वीराज भी इस वीर व्रती महापुरुष का यश गाता रहता था।

अकबर को हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक मान कर उसे महान् कहने वाले तो इतना तक कह छोड़ते हैं कि 16वीं शती में अकबर ने वही काम किया जो महात्मा गांधी ने 20वीं शती में किया। इन भोले बन्धुओं को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि नौरोज के मेले में पाप कानन के पुजारी अकबर को धड़ाम से नीचे

गिराकर उसकी छाती पर कटार तानने वाली वीर राजपूतनी किरणमयी का हृदय अकबर का रोना सुनकर द्रवित न हो गया होता तो भारतवर्ष का इतिहास ही कुछ और होता। अकबर की कूटनीति तो इतिहासकार बदायुनी आसफ खां के निम्न शब्दों से प्रकट हो जाती है—

'किसी की ओर से सैनिक क्यों न मरे, थे वे हिन्दू ही और प्रत्येक स्थिति में विजय इस्लाम की ही थी।'

उस धूर्त धर्म-शत्रु के विरुद्ध गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक धर्म क्रान्ति जगाई तथा महाराणा प्रताप ने एक राष्ट्रीय संघर्ष प्रारम्भ किया। 25 वर्ष तक वन-वन की खाक छानते फिरना, पत्थर की शिलाओं पर सोना, घास-पात की रोटियाँ और शीत, घाम, वर्षा, सूखा सभी कुछ सहते हुए भी भारत माँ की अर्चना में कोई अन्तर न आना—किस महापुरुष ने इतना बड़ा बलिदान किया है? राजस्थान के लोक गीतों में आज तक वहाँ की भोली-भाली रमणियाँ गाती हैं—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप,
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै सांप।

'हे माँ! तू ऐसा पुत्र पैदा कर जैसा महाराणा प्रताप, जिसके पराक्रम से भयभीत हुआ वह पापी अकबर भी रात्रि के समय घबरा कर उठ खड़ा होता है, जैसे उसके तकिए के नीचे कोई सांप हो।'

मेवाड़ के कण-कण में जिस का यश अंकित है और कोटि-कोटि भारतवासियों के हृदय मन्दिर में जिसकी भव्य स्वातन्त्र्य मूर्ति प्रस्थापित हो चुकी है उस कोटिशः वंदित वीर-कुल भाल तिलक महाराणा प्रताप को हमारी कोटि-कोटि हृदयांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

1 अगस्त 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

बढ़ती प्रांतीय प्रवृत्ति पर

हे सिंधु पुत्र हिन्दू, बिन्दु के समान जीना छोड़ सिन्धु के समान जी। बूँद-बूँद के सम्मिलन से ही धारा बनती है। किन्तु स्वार्थवश हर बूँद अपना अलग अस्तित्व रखना चाहे तो बूँद का नाश तो होना है, धारा भी सूख जायगी। इसके विपरीत बिन्दू अपने को सिंधु में ही विलीन रखे तो धारा भी प्रवाहित रहती है और धारा रूप से उसका अस्तित्व भी बना रहता है। सिन्धु संस्कृति की धारा में हम भी अलग-अलग वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय रूप से बिन्दु सदृश ही हैं।

—डॉ. ओबराय

देश गौरव महाराणा प्रताप

प्रातःस्मरणीय हिन्दूपति, वीर शिरोमणि, महाराणा प्रताप का नाम भारत के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं गौरवास्पद है। वे स्वदेशाभिमानी, कुशल राजनीतिज्ञ, रण कुशल, स्वार्थ त्यागी, दृढ़ प्रतिज्ञ तथा सच्चे क्षत्रिय थे। स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान उनमें कूट-कूट कर भरे थे। वे झुकना नहीं जानते थे। वे अकेले राजपूत थे जिन्होंने अकबर का दासत्व स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अकेले ही मुगलपति अकबर की प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं को सेवक बनाने वाली कूटनीति का मुँह-तोड़ उत्तर दिया। शहँशाह अकबर ने इस वीर को अनेकों प्रलोभन दिए पर रजपूती आन का पक्का वह सम्राट्, हिन्दुत्व का वह गौरवमय सूर्य सदा अडिग रहा।

अद्भुत शौर्य एवं स्वाभिमान का वर्णन सुनकर अकबर का सेनापति मानसिंह प्रताप से मिलने आया। एक झील के किनारे भोजनशाला बनाई। राजकुंवर अमरसिंह आयोजन के लिए नियुक्त हुआ। भोजन आरम्भ हुआ। महाराणा की अनुपस्थिति पर मानसिंह ने कारण पूछा तो कुंवर अमरसिंह का उत्तर था—'पिताजी को शिरवेदना है अतः वे आने में असमर्थ हैं'। मानसिंह को बात समझते देर न लगी। बोला—'अब इस सिरदर्द की दवा लेकर ही लौटूंगा।' इतने में राजस्थान केशरी बाहर निकले और मूँछों पर ताव देते हुए बोले—मैं उस व्यक्ति के साथ बैठकर कैसे भोजन कर सकता हूँ जो राजपूती शान से गिर कर यवनों का सम्बन्धी बन गया है, अपनी बहिन-बेटियों की डोली भेजकर, बप्पा रावल के वंशज के साथ भोजन करना चाहता है।

सचमुच मानसिंह दवा लेकर हल्दीघाटी में आ पहुँचा। पर उस प्रताप पुंज के सम्मुख अधिक टिक न सका। हल्दीघाटी में घमासान युद्ध हुआ। एक ओर एक लाख यवन और वे भी असीमित गोला-बारूद सहित और दूसरी ओर केवल 22000 हिन्दू योद्धा जिनके हाथों में बर्छी, भाले, बाण सुशोभित थे।

अनेकों वीर हँसते-हँसते मातृदेवी पर बलिदान हो गए। नित्य प्रति एक से बढ़कर एक वीर नायक के नेतृत्व में मुगल सेना नई युद्ध सामग्री लेकर आई पर

देशधर्म पर मरने वाले राजपूत वीरों ने धन के लिए लड़ने वाले कायर यवनों के छक्के छुड़ा दिये।

प्रताप के पास अब केवल 8000 वीर बचे थे। शेष सभी की स्वातन्त्र्य यज्ञ में आहुति हो गई थी। दिन का तीसरा प्रहर था। प्रताप कई घन्टों से निरन्तर अरिदल का शिरछेदन कर अपने खड्ग की पिपासा शान्त कर रहे थे। वे कुछ थक गए थे। अब भी उनकी अर्धचन्द्रिका पलभर का भी विश्राम न करती थी। प्रताप वार पर वार किए जा रहे थे। सहसा यवनों की एक बड़ी टुकडी ने हिन्दूकुलपति महाराणा को घेर लिया। स्वामी को विपत्ति में लख महाराणा प्रताप के एक अभिन्न सरदार झालापति ने कहा, 'स्वामी! आप प्राण रक्षा कीजिए। आपके मेवाड़ में न रहने से हिन्दू जाति का दीपक सदा के लिए बुझ जाएगा। आप शीघ्रता कीजिए और इस संकट से अपने को मुक्त कीजिए।' प्रताप बोले, 'मैं कायर की मौत नहीं मरना चाहता, मातृ भूमि की रक्षा के लिए मैं प्राण-पण लगा दूंगा।' अब झालापति ने एक और युक्ति लगाई। बोले—महाराणा! आप कृपया मुझे अपना ताज पहनने का सौभाग्य प्रदान कीजिए। प्रताप बोले, 'क्यों नहीं, जब मातृभूमि के लिए सारा राज्य न्योछावर कर दिया है तो मुकुट की क्या बात है।' वह स्वर्णरत्न जड़ित किरीट अब झालापति के सिर पर सुशोभित था। उन्होंने झट अपनी तलवार से चेतक की पूँछ काट दी। महाराणा प्रताप का प्यारा चेतक व्यथा से पीड़ित हो युद्धक्षेत्र से बाहर भागा।

इधर झाला के सिर पर प्रताप का ताज देख मुगल सैनिक उसे ही प्रताप समझ कर उस पर टूट पड़े। कुछ काल तक शत्रुओं का सामना करने के पश्चात् भारत माँ के इस सपूत ने स्वामी और देश की रक्षा के लिए वह अनोखा बलिदान दिया जिसे इतिहास सदा स्मरण रखेगा।

स्वामीभक्तों एवं दानवीरों की नामावली में दूसरा नाम महाराणा के प्रिय मित्र एवं परम उदार मंत्री भामाशाह का है, जिसने ऐसे संकट में, जबकि हिन्दू गौरव दीप प्रायः बुझा जा रहा था, महाराणा प्रताप की, अपने अनेकों पूर्वजों द्वारा संग्रहित अपार धनराशि से सहायता की। हिन्दूकुलपति महाराणा प्रताप के पास सम्पूर्ण धन-दौलत एवं सैनिक सामग्री समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने अपनी प्यारी मातृभूमि चित्तौड़ को छोड़कर अन्यत्र जीवन यापन करने का निश्चय कर लिया था। वे अपने सभी साथियों एवं सरदारों सहित अपनी जननी, जन्मभूमि छोड़कर जा रहे थे। वे एक बार रुके, अश्रु विगलित नेत्रों से मेवाड़ को देखा, मन ही मन में प्रणाम किया और फिर बढ़ चले। तभी उन्हें पीछे से आवाज सुनाई दी। भामाशाह पुकार कर कह रहा था 'ओ मेवाड़पति, हिन्दू नाम के आश्रयदाता, तनिक ठहरो, इस दास की एक विनती सुनते जाओ।' पास आने पर वह महाराणा के चरणों पर

गिर पड़ा और बोला, 'धर्मावतार, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार हो। एक बार फिर मेवाड़ की ओर घोड़े की बाग मोड़ी जाए। इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपये की सम्पत्ति दरबार की दी हुई पड़ी है, उसी से एक बार फिर सेना एकत्र की जाए और मेवाड़ के उद्धार का उद्योग किया जाय।'

भामाशाह का कथन सुनकर प्रताप गद्गद हो गए और भामाशाह को गले लगा लिया, बोले—'तुम धन्य हो। तुम्हारा त्याग अविस्मरणीय है।'

प्रताप अपने मंत्री के आग्रह से एक बार फिर मेवाड़ लौट पड़े और उस पुण्य राशि से मेवाड़ का पुनरुद्धार किया।

देश एवं जाति पर तन-मन एवं धन अर्पण करने वाले इन वीरों के उज्ज्वल नाम इतिहास पटल पर सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे।

9 जून 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

हे पुण्य आर्यभूमि! तेरा अधःपतन कभी नहीं हुआ। राजदण्ड भग्न हुए और दूर फेंके गये, शक्ति की गेंद इस हाथ से उस हाथ पर गई, पर भारत में राजदरबार में और राज सिंहासन का प्रभाव इने-गिनों पर ही पड़ा; असंख्य जन समुदाय उच्चतम से लेकर निम्नतम तक—सभी को उसी अपरिहार्य मार्ग का—उस जातीय जीवन-धारा का अनुगमन करना पड़ा जो कभी धीमी और अर्धचेतन तो कभी प्रखर और जागरित हो बहती रही।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

यही बात 'हिन्द स्वराज्य' में गांधीजी कहते हैं—'भारत कभी गुलाम नहीं रहा। केवल कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग ही अपने को अंग्रेजों का गुलाम समझते हैं।'

गढ़ रूपनगर की राजसुता

(1)

इक वृद्ध बिसातिन दिखा रही
थी कई खिलौने मनहारी,
मिट्टी के रंग-बिरंगे बुत
दिखते सजीव, जीवनधारी।
उनमें अकबर और शाहजहान्
बाबर का वंशज जहांगीर,
योद्धाओं के थे सुन्दर पट,
अश्वारोही रजपूत वीर।
फिर था दिल्ली का शहन्शाह
औरंगजेब पापाचारी।
पर उनमें चित्र सिलोना इक
था राजसिंह भालाधारी।
राणा प्रताप का प्रबल पौत्र
उदयपुर सिंहासन-धारी।
उस रूपनगर के महलों के
आंगन में निज सखि वृन्द संग
वह रूपनगर की राजसुता
वह चारुमति अति सुकुमारी
लख रही प्रेम विह्वलता से
वह राजसिंह-मूरत प्यारी,
उस वीर प्रवर की छवि न्यारी
लख निर्निमेष दृग-मीनों से
शतबार गई वह बलिहारी।

उस वृद्ध-बिसातिन ने फिर इक
दढ़ियल लम्बा बुत दिखलाया
'दिल्ली का अधिपति मुगलराज
औरंगजेब' यह समझाया।
पर उस शूकर-मुख को लखकर
बकरे सी दाढ़ी को लख कर—
बंकिम कुबड़ी कटि को लखकर
चंचल बालायें हंस पड़ीं—
'दिल्ली का अधिपति मुगलराज,
—यह हाड़-मांस का पिंजर-सा,
अपनी मृत्यु के पल गिनता,
राजा क्या, यह तो रंकराज?
दिल्ली का अधिपति मुगलराज!'
इस हंस-हिंसोड़े में ही तो
औरंगजेब-बुत फूट गया
दर्जन टुकड़ों में टूट, गया॥
वह बुढ़िया शोर मचाती सी
बालाओं को धमकाती सी
बोली, 'बुत की कीमत लाओ'
नासा को खूब फुलाती सी।
उस चंचल बाला चारुमति ने
तुरंत चित्र का मूल्य पटक

सब सखियों को आदेश दिया,
'सब बुत पर मारो तीन जूत।'
कहना क्या था बस पलभर में,
हो गई वहां कुतूहलकारी
अगणित जूतों की वर्षा सी,
वह मूरत हो, खण्डित सारी,
मिट गया 'जेब' दाढ़ीधारी॥
इस पर वह बुढ़िया बिगड़ उठी
बोली, 'मैं अभी-अभी जाकर
दिल्लीपति को सब बतलाती,
यह तिरस्कार घटना सुनकर
इस चंचलता का प्रतिकार
लेवेगा अधिपति मुगलराज।'
बालाएं हंस कर बोल उठीं—
'क्या वह दिल्लीपति मुगलराज,
जो अभी हमारे जूतों की,
धूलि चटकर मिट गया आज?'

(2)

पुत्री दिल्ली के शहन्शाह
ने भेजा है इक संदेशा—
'सुकुमारी चारुमति को झट
मेरे, रनिवासियों में भेजो,
अथवा इस रूपनगर की तो
भारी शामत आई समझो।'
'मैं क्या कर सकता हूँ बेटी!
है मार्ग यही कि भेंट करूं।
मैं रूपनगर का रजवाड़ा,
वह है दिल्ली का शहन्शाह,
सारे भारत का बादशाह,
उस में सेना का बल अथाह,
यदि तुझे न भेंट किया मैंने
तो इस धरती की ईंट-ईंट
बज कर हो जाएगी तबाह।'
'हे वीर वंश के पितृ देव!
मेरा तुझ को शत नमस्कार,
पर ऐसे शब्दों के कारण
हमको क्या, कुल को भी धिक्कार!
मैं राजपूत सुकुमारी हूँ
कोमल कंचन की क्यारी हूँ
पर पापी को स्वाहा करने में
मैं जलती चिंगारी हूँ।
हे तात यदि मम रक्षा में
पाते हो निज को निर्बलतर
तो अबला नहीं बला हूँ मैं,
वह मुण्ड मालिनी काली हूँ।
दुर्गा की वह रणहाला है,
मीरा का विषधर प्याला है,
अथवा पद्मिनी सम विहस विहस
जलने को जौहर ज्वाला है।
ओ राजपूत कुल अभिमानी
इस राजपूत की बाला को
क्यों बनवाते हो मुगलानी?
इस से अच्छा है यहीं स्वयं
दो चिता-ज्वाला में डाल मुझे
महलों से वंचित कुटिया में,
वन में रहना स्वीकार मुझे।
पर धर्म भ्रष्ट हो, जाति भ्रष्ट हो,
वीर-वंश-मर्यादा भ्रष्ट हो,
मुगलानी बन या बेगम बन
वह निन्द्य पतित जीवन यापन कर
इक राज घराने का ही क्या,
दुनिया का वैभव नहीं कभी

स्वीकार मुझे, स्वीकार मुझे!
निज राष्ट्र धर्म मर्यादा हेतु
मर मिटना अंगीकार मुझे।'

(3)

'हे राजपूत कुल के गौरव
भारत-भू के मणि-मुकुट रूप
सतियों के रक्षक पुण्य रूप
हे त्यागी राणा राजसिंह
यह परम्परा का पुण्य-सूत्र
'रक्षक का व्रत' का परिचायक
तन्तु-तन्तु में त्याग लिए
औ, राष्ट्र धर्म अनुराग लिए,
कुछ हाव लिए कुछ भाव लिए,
कुछ अरमानों के घाव लिए,
निबल-रक्षा दायित्व लिए,
रण में बढ़ने का चाव लिए,
हिन्दू संस्कृति का अजर सूत्र,
मैं भेज रही हूँ आज नाथ
यदि वीर बाहुओं में बल है,
तो आओ ले तलवार हाथ!
अथवा मैं तो क्षत्राणी हूँ,
(यह चारुमति है नहीं दीन)
पापी के हाथों में पड़ने
से पूर्व ही कर सकती हूँ मैं—
अपनी इस तेज कटारी से,
यह कंचन काया प्राण हीन।
यदि बचा सको तो बचाओ,
संकट में सत्य सती का है,
अन्तिम क्षण में बस इतना ही
कहना इस चारुमति का है।'

(4)

'ओ बांके योद्धा घुड़सवार,
घोड़ा तुरंत ही दौड़ाओ,
उस रूपनगर के महल में,
मेरा संदेश पहुँचाओ।
राणा प्रताप का वीर रक्त,
नस-नस में ठाठें मार रहा,
बाप्पा रावल केशरी तुल्य
अन्तर में आज दहाड़ रहा,
वह सदियों के अरमानों का,
बीते युग के अफसानों का,
मौत के मंगल गानों का,
वह रक्षा-व्रत मरदानों का,
तूने भेजा है आज मुझे
हे वीरे! मैं तो धन्य हुआ।
इक कर में बांधे विजय सूत्र,
दूजे में भीषण चंग लिए—
भैरव ललकारें भरती सी,
अपनी सेना को, संग लिए,
आता है राणा राजसिंह,
रक्षा की प्रबल उमंग लिए,
राखी की लाज बचाऊँगा
ले खड़्ग हस्त भिड़ जाऊँगा
औरंगजेब के काम भरे
कानन में आग लगाऊँगा,
तू चिंतित मत हो राज सुते,
यह रक्षक जीवित है तेरा,
जब तक इस तन में प्राण रहें,
तब तक है कौन जो बालबंक,
तक भी कर सकता है तेरा?'

(5)

गढ़ रूपनगर के बाहर ही,
मुगलों के सैनिक शिविरों पर,
मतवाला योद्धा राजसिंह,
भूखे नाहर के ही समान,
टूटा लेकर सेना महान।
वह प्रलय काल की आग बना
'जयजय शिवशंकर' बोल उठा
हलचल फैली बैरी दल में
औरंगी तख्ता डोल उठा।
थी धार मिली तलवारों की,
भागे थे जान बची न बची,
बोटी दढ़ियल सरदारों की।
दिल्ली का अधिपति मुगलराज
भागा था कायर के समान।
चिल्लाते थे अल्ला अल्ला,
रण में गिरते तुर्की जवान,
पापी शोणित सागर महान,
भीषण लहरें लेता उफान,
जिसमें वीरों ने किया स्नान,
रख लीं सतियों की आनबान
राणा की थी रमणीय शान,
कन्धे पै भाला, कर कृपाण,
रंजित थे सारे गात्र-त्राण,
पुलकित थे वे प्रण-पूर्ण प्राण,
बजते थे रण बाजे, विषाण,
लहराता था भगवा निशान,
गुंजाता 'हर हर' विजय गान,
धन्य यह रक्षा बन्धन आज,
सती की रख ली जिसने लाज,
धन्य है राजसिंह युवराज,
विमल यश गाता विज्ञ-समाज।
धन्य यह सत्य प्रेम का दीप,
देश का उज्जवल काल समीप।

'हिन्दू शब्द हमारे साथ विशेष रूप से हमारे इतिहास के गत एक सहस्र वर्षों के संकटपूर्ण काल से जुड़ा रहा है। पृथ्वीराज के दिनों से लेकर हमारे समस्त राष्ट्र-निर्माताओं, राज्य-वेत्ताओं, कवियों और इतिहासकारों ने 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हमारे जन-समाज और धर्म को अभिहित करने के लिये किया है। गुरु गोविन्द सिंह, विद्यारण्य और शिवाजी जैसे समस्त पराक्रमी स्वतंत्रता-सेनानियों का स्वप्न 'हिन्दू-स्वराज्य' की ही स्थापना करना था। 'हिन्दू' शब्द अपने साथ इन समस्त महान् जीवनों, उनके कार्यों और आकांक्षाओं की मधुर गंध समेटे हुए है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)

स्वातंत्र्य की बलिवेदी पर

विश्व के अनादि एवं अविनश्वर साहित्य, वेद में, मातृभूमि के प्रेम में आप्लावित हो कर हृदय से निकलने वाली निश्छल भावधारा का श्रुतिमधुर गेय पदावली में गायन किया गया है—

उपस्यास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः।
दीर्घ न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

अर्थात् हे मातृभूमि! तेरी गोद हमारे लिए हर प्रकार की बीमारी से मुक्त हो। इस में हम खूब खेल सकें। तू हमें दीर्घ आयु प्रदान करती रहे और हम तेरी वेदी पर बलियाँ चढ़ाते रहें।

'हे माँ! हम तेरी वेदी पर हँस-हँस कर बलियाँ चढ़ाते रहें, तेरे सौभाग्य की रक्षा के लिए हम अपने प्राण न्योछावर कर दें, अपना सर्वस्व लुटा देवें'—यह उदात्त राष्ट्रीय भावना विश्व में सभ्यता के प्रथम प्रकाश की वेला में भी भारतीय हृदय में ध्रुव संकल्प बन कर साकार हो चुकी थी। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में, भारत का ऋषि मातृभूमि के स्वर्णिम प्रभात को देख कर गीत के माध्यम से नृत्य कर उठता है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

'यह धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।' और माँ-पुत्र का सम्बन्ध एक महान् ऋण का, एक महान् उत्तरदायित्व का सम्बन्ध है। भौतिकवाद की चकाचौंध से जिनकी आँखें अंधी हो रही हैं वे मातृभूमि को भले ही एक भूमिखण्ड मात्र मानें किन्तु जिनकी प्रज्ञा की आँख अभी बन्द नहीं हुई है तथा जिनके हृदय की श्रद्धा की क्यारियाँ अभी पूर्णतया सूख नहीं गई हैं, वे सहज अनुभव कर सकते हैं कि जिस भूमि ने उन्हें अपने अन्न-जल से पाला-पोसा, अपने अंक में रहने को स्थान दिया, जहाँ उनके अनेकानेक महान् पूर्वजों के चरित अंकित हैं, जहाँ के आचार, विचार, सभ्यता, संस्कृति ने उनके जीवन को सच्चे अर्थों में जीने

योग्य बनाया, उस मातृभूमि के प्रति हमारा अनन्त ऋण है, एक महान् कर्तव्य है, जिसको न निभाने से हम घोर कृतघ्नता के दोष से लांछित होंगे। याज्ञवल्क्य मुनि का कथन है—

'कृतघ्नेर्नास्ति निष्कृतिः।'

अर्थात् कृतघ्नता के घोर पाप से कोई छुटकारा नहीं।

एक जवान पुत्र की नसों में जवानी का गर्म रक्त बहते यदि उसकी जन्मदात्री माता पराधीन रहे तो उस की भरी जवानी पर सौ-सौ लानत है। इस ज्वलंत देशभक्ति की भावना से प्रेरित हो कर पराधीनता के कलंक को धो डालने के लिए अनेक बार माता के वीर लाल समरांगण में कूदे। उन की एक ही आकांक्षा रही—'तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहें न रहें।' सन् 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर उसी पवित्र प्रेरणा का ज्वलंत रूप था। क्रान्ति के अनेक कारण गिनाए जाते हैं। देशी राजाओं द्वारा बच्चों को गोद लेना और ब्रिटिशराज का उन्हें मान्यता न देना, अवध की बेगमों से दुर्व्यवहार, नन्द कुमार की फांसी, भारत का आर्थिक शोषण, कारतूसों में गाय या सूअर की चर्बी का प्रयोग, इत्यादि। पर इतना तो निश्चित है कि इन सब कारणों में बड़ा कारण था गुलामी के अपमानजनक तोहफा को उखाड़ फेंकने के लिए बेचैनी। बस स्वातंत्र्य प्रेम से प्रेरित भारतीय जनगण जाग उठा तथा विश्व के इतिहास ने एक बार सिद्ध कर दिखाया कि हम कोई पतित जाति के लोग नहीं हैं जो गुलामी का जीवन बसर कर मालिक के दिए हुए टुकड़ों पर ही जीते रहें। हम स्वातंत्र्य के सब से प्रमुख एवं सब से प्रबल ग्राहक हैं तथा उसके लिए बड़े से बड़ा मूल्य दे सकते हैं।

103 वर्ष पूर्व के भारत का चित्र बड़ा रोमांचकारी है।

मेरठ जहाँ क्रान्ति ज्वाला की चिनगारी सुलगी वहाँ 85 सैनिकों का चर्बी वाले कारतूसों के विषय में विरोध, शेष सैनिकों की उदासीनता। गांव लौटने पर गांव की स्त्रियों द्वारा उन जवानों के स्वाभिमान पर तीक्ष्ण व्यंग्य, मंगल पाण्डे का स्वाभिमानपूर्ण प्रतिकार, बेगम पुल पर अंग्रेज अफसरों की हत्या, मंगल पाण्डे को फांसी देने के लिए किसी भारतीय सैनिक का तैयार न होना। ये सब कुछ अत्यन्त रोमांचकारी घटनाएँ हैं जो भारतीय जनगण के हृदय में स्वाभिमान का एक ज्वार उभारने वाली हैं। मेरठ के वे प्राचीन वृक्ष, जहाँ सैकड़ों माताओं के पुत्रों को फांसियाँ दी गईं, आज भी एक मर्मस्पर्शी स्मृति लिए खड़े हैं।

मेरठ के वीर सिपाही 'मारो फिरंगी मारो फिरंगी' उच्चारते हुए दिल्ली पहुँचे। उन्होंने रात्रि को यमुना पार की। यमुना के पवित्र जल में स्नान कर उन्होंने मानो पारतंत्र्य के कलंक को धो डाला। लाल किले में बैठे बहादुरशाह को अपने साथ

मिलाया। फिर दिल्ली के गली-कूचों में 126 दिन तक जो घमासान युद्ध हुआ, उस सबका शब्दों में वर्णन ही सम्भव नहीं। दिल्ली की धरती ने अपनी ही छाती पर वह सबकुछ सहा। अपने ही पुत्रों के रक्त से नहा कर धरती कांप उठी। यमुना मैया का पानी लाल हो गया। दिल्ली के इर्द-गिर्द बनी साढ़े 5 मील लम्बी दीवार में लगे हुए तोपों के गोलों के घाव आज तक हरे हैं। 103 वर्ष पश्चात् भी वे एक मूक सन्देश दे रहे हैं।

यह खूनी दरवाजा, दिल्ली गेट के पास जहाँ बहादुरशाह के जवान बेटों को फांसी दी गई। यह चांदनीचौक, सड़क के बीचोंबीच चलने वाली नहर में अनेकों सिसकते प्राण और तड़पती आत्माएँ आज तक पड़ी हैं। फव्वारा, जहाँ मुगलों का फांसीघर था। मातृभूमि के प्रेम पर जीवन को न्योछावर करने वाले अनेक वीरों ने यहाँ हंस-हंस कर फाँसी की डोरी को चूमा।

हुमायूँ के मकबरे में बहादुरशाह को कैद किया गया। अंग्रेज कर्नल हेडीसन ने बहादुरशाह के बच्चों की हत्या करने के पश्चात् उनके शीश थाली में डाल कर बहादुरशाह को भेंट किए। उस बूढ़े पिता के कलेजे पर जैसे छुरियाँ चल गईं। फिर कर्नल हेडीसन ने जले पर नमक छिड़कते हुए बहादुरशाह को व्यंग्य से कहा—

दमदमे में दम नहीं, अब खैर मांगो जान की।
शाह, हमने देखली, तलवार हिन्दोस्तान की।

तुरंत बहादुर के भीतर से भारत का स्वाभिमान गरज कर बोल उठा—

गाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख्ते लन्दन तक चलेगी, तेग हिन्दोस्तान की।

फिर इस बूढ़े शाह के साथ क्या कुछ हुआ वह आँसू भरी कहानी है। अपने प्यारे स्वदेश से दूर रंगून में जलावतन किया गया। यह देशभक्त शाह वहीं तड़प-तड़प कर मर गया।

कानपुर और कालपी का चित्र भी बड़ा रोमांचकारी और बड़ा भयानक है। नानाजी का वह शौर्य, उनकी देशव्यापी योजना, लाल कमल और चपाती के चिह्न द्वारा देश में क्रान्ति का सन्देश प्रसारित करना, वह युद्ध नीति और वह रण चातुर्य, क्रान्ति के प्रचारकों—सन्तों-फकीरों को भारत के कोने-कोने में भेजना, विदेशों में प्रचार के लिए मन्त्री अजीमुल्ला खां को विलायत भेजना। सबकुछ एक चित्रपट की नाईं आंखों के सम्मुख दौड़ा चला आता है।

जहाँ जवानों के जौहर चमके वहाँ वृद्धों की वीरता भी पीछे नहीं रही। देशव्यापी महाक्रान्ति में बिहार प्रांत ने भी अपना गौरवपूर्ण योग दिया। जगदीशपुर के 80 वर्ष के वृद्ध राणा कुंअरसिंह की नसों में एक अभिनव जवानी जाग उठी

थी। उस बूढ़े किन्तु पक्के शिकारी ने चुन-चुन कर ब्रिटिश सेनाओं का शिकार किया। उस बूढ़े रणबांकुरे ने आरा, कालपी, बांदा, रीवां और आजमगढ़ में अपने रण कौशल से अंग्रेज को खूब छकाया। अंग्रेज उसकी व्यूह रचना देखकर दंग रह गये। विजयी कुंअरसिंह जगदीशपुर लौटते हुए जब गाजीपुर के पास गंगा पार कर रहे थे तो एक अंग्रेज की गोली से उन की भुजा आहत हो गयी। यह विचार कर कि इस कारतूस में जिस अपवित्र चर्बी का प्रयोग किया गया है, उसके शरीर में रहने से मेरा धर्म नष्ट होता है, वीर कुंअरसिंह ने अपनी ही तलवार से बायीं भुजा काट कर गंगा की धारा में समर्पित कर दी। इस प्रकार गंगा मैया को अपना हस्तकमल भेंट करने वाले वीर शिरोमणि कुंअरसिंह का यश आज तक बिहार के गांव-गांव में वहाँ की नारियों के मुख से सहज निसृत होने वाले लोकगीतों में गूंजता है—

बाबू कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
नेता कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
राणा कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
अब न रंगैहू केसरिया
अब न रंगैहू केसरिया।

बिहार की ललनाओं के सुहाग की रक्षा करने वाले राणा कुंअरसिंह के राज बिना अब वहाँ की युवतियाँ सुहागसूचक केसरी परिधान रंगा कर क्या करें?

जहाँ गंगा और यमुना के तटों पर खून की होली खेली गयी, वहीं पंजाब की नदियाँ भी लाल हुए बिना न रहीं। 26 नंबर पलटन के कुछ थके हुए सिपाही अजनाले से 6 मील दूर रावी नदी के तट पर पड़े हुए थे। इन निहत्थे सिपाहियों पर गोलियों की वर्षा प्रारम्भ कर दी गयी। कुछ जल में डूब मरे, कुछ गोलियों से मरे, जो तैर कर एक छोटे से टापू में पहुँचे उन 282 सैनिकों को संगीनों के साये में अजनाला लाया गया। वहाँ बकरीद के दिन उन्हें बकरों के समान उड़ा दिया गया। 45 सैनिकों को एक गुम्मद में से घसीट-घसीट कर एक कुएँ में फिंकवा कर कुएँ को भरवा दिया गया और उस पर एक टीला बनवा दिया गया।

फिर कानपुर से प्रयागराज तक, जी. टी. रोड के दोनों और वृक्षों से लटकती हुई भारतीयों की लाशों का दृश्य कितना हृदयविदारक था। अत्याचार की दारुण कहानी का ज्ञान ब्रिटिश सैनिकों के उन पत्रों से प्राप्त होता है जो उन्होंने उन्हीं दिनों अपने सम्बन्धियों को लिखे। एक अंग्रेज सैनिक लिखता है, 'हमने एक बड़े गांव में आग लगा दी। जनपूर्ण इस गांव को हमने घेर लिया। आग की लपटों से लोग गांव से निकल कर भागने लगे। तब हमने उन्हें गोलियों से उड़ाना आरम्भ कर दिया।' यह पत्र Charles Balls Indian Mutiny Vol. I के पृष्ठ 243, 244 पर

मुद्रित है। एक अन्य अंग्रेज का वर्णन है—'सड़कों के चारों रास्तों पर और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थीं उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने वाली 8 गाड़ियाँ लगातार 3 महीनों तक काम करती रहीं। इस प्रकार एक स्थान पर 6000 मनुष्यों को देखते ही देखते खत्म कर के सुला दिया गया।'

बिजली और आंधी का साकार पुतला तांत्या टोपे। उसका स्मरण ही कितना रोमांचकारी है। देश पर संकट के बादल देखकर, एक छोटे से आश्रम में बैठा हुआ बच्चों को संस्कृत पढ़ाने वाला उपाध्याय तांत्या एकदम सेनापति तांत्या बनकर जाग उठा। देश में जहाँ से भी सहायता की पुकार आई; वह वहाँ पहुँचा और ब्रिटिश सेनापतियों के छक्के छुड़ा दिये। स्वयं ब्रिटिश इतिहासकारों की स्वीकारोक्ति है कि 'यदि तांत्या जैसे 6 सेनापति और हो जाते तो भारत में ब्रिटिश राज्य सदा के लिये समाप्त हो जाता।' कई इतिहासकारों का मत है कि जब ब्रिटिश सेना ने तांत्या टोपे को सोते हुए ही आकर घेर लिया तो उनके एक परममित्र नारायण राव ने तांत्या के वस्त्र पहन कर स्वयं को समर्पित किया तथा अपने वीर मित्र के मूल्यवान प्राण बचाने के हेतु वह स्वयं फांसी पर चढ़ गया।

झांसी का दृश्य कितना गौरवपूर्ण था। 22, 23 वर्ष की विधवा लक्ष्मीबाई ने बड़े-बड़े ब्रिटिश सेनापतियों के साथ एक रोमांचकारी युद्ध किया। वह मर्दानी वीरांगना लक्ष्मीबाई सचमुच दुर्गा के समान हाथों में दो नंगी तलवारें लिए, पीठ पर अपने नन्हे से बच्चे को बांधे हुए समरांगण में बिजली के समान अरिदल का संहार कर रही है। एक बार 9 दिन-रात लगातार युद्ध में बीते, बच्चा भूख-प्यास से व्याकुल हो छटपटाने लगा। युद्धस्थल से तनिक दूर हट कर रानी ने अपने भूखे पुत्र को नदी का जल पिलाया, कुछ चने खिलाये, अचानक लेफ्टीनेंट बौकर आ धमका। उसने अपना खड्गधारी हाथ बढ़ाकर उस बच्चे को दुलार देती हुई माता के ऊपर मारा।

लक्ष्मीबाई दुर्गा के समान घोड़े की एक रकाब पर पैर रखे खड़ी थी साक्षात् चंचला के समान नीचे से खड्ग का एक अद्भुत वार मारकर बौकर का वह खड्गधारी हाथ खड्ग समेत काट कर परे फेंका। बौकर चिल्लाता रहा पर रानी हवा हो गई। ऐसी वीरता की साक्षात् प्रतिमा उस मस्तानी, मरदानी रानी लक्ष्मीबाई का स्मरण हृदय को कितना उद्वेलित करने वाला है। उसके दर्शन से हृदय की सुप्त वीरता एकदम जाग उठती है। राष्ट्र के हृदय में सोई हुई स्वातंत्र्य स्वाभिमान की भावना जीवित जागृत होकर खड़ी हो जाती है।

इन सब वीरों की वंदना, क्रान्ति के प्रचारक सन्तों-फकीरों की वन्दना, रोटी और लाल कमल की वन्दना, देश के शहीदों की अनवरत वन्दना, अनन्त वन्दना।

सन् 1857 की स्मृतियों को हृदय में संजोए हुए देश के खण्डहरों की वन्दना, खून भरी नदियों की वन्दना, युद्ध के मैदानों की वन्दना, समरस्नात दुर्गों की वन्दना, फांसी वाले वृक्षों की वन्दना, शहीदों के रक्त की वन्दना, तड़पती आत्माओं की वन्दना, सिसकते प्राणों की वन्दना, स्वातंत्र्य ज्वाला की वन्दना, भरतभूमि की, भारतमाता की वन्दना, कोटि-कोटि वन्दना, असंख्य कोटि वंदना।

अब आर्थिक गुलामी

राजनीतिक गुलामी दुनिया से उठ गई इस सदी में आकर क्योंकि राजनीतिक गुलामी महंगी पड़ने लगी। राजनीतिक की जगह आर्थिक गुलामी (इकोनामिक स्लेवरी) नई ईजाद हो गई। राजनीतिक गुलामी का मतलब है, एक मुल्क पर पूरा कब्जा रखो। आखिर कब्जे का फायदा यह है कि उसका शोषण करो। यह पुराना ढंग था। अब नया ढंग यह है कि कब्जा रखने में बड़ी मुश्किल होती है, तो मुल्क इनकार करता है शोषण से। झगड़ा करता है, विरोध करता है। दिन-रात गोली चलाओ, पुलिस बिठाओ, मिलिटरी बिठाओ फिर भी झंझट जारी रहती है। तब एक दूसरी नई तरकीब ईजाद हो गई, वह है इकोनामिक स्लेवरी— आर्थिक गुलामी, राजनीतिक नहीं। राजनीतिक रूप से मुक्त कर दो और आर्थिक रूप से भीतर बाजार में हाथ डालकर शोषण जारी रखो।

इसलिये दुनिया में सब मुल्क आजाद हो गये और सब मुल्कों को, जो उनके मालिक थे उनको आजाद कर दिया है, सिर्फ उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया है। उनके बाजारों का शोषण जारी है। हम समझते हैं स्वतंत्र हो गये, लेकिन बाजार में जाकर देखें तो आलपिन से लेकर हवाई जहाज तक सब कहीं और से बनकर चला आ रहा है, वहाँ से आर्थिक शोषण जारी है। सारी दुनिया में यह समझ आ गई कि अब राजनीतिक गुलामी महंगी पड़ती है, अब आर्थिक गुलामी ही उचित है। बाजार पर कब्जा रखो। इसलिये सारी दुनिया स्वतंत्र हो गई है।

—आचार्य रजनीश

लोकमान्य की लोकप्रतिष्ठा का आलोकस्तम्भ

जब तक भारतीय चरित्र में स्वातंत्र्य प्रेम तथा राष्ट्रीय कृतज्ञता का भाव किंचित्मात्र भी शेष है तब तक स्वतंत्र भारत में श्वास लेने वाले कोटि-कोटि भारतीयों का प्रत्येक श्वास स्वतंत्रता के देवदूत, लोकमान्य बाल गंगाधर का ऋणी रहेगा, जो राष्ट्रीय स्वराज्य के मन्त्र को हमारे जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में घोषित करने वाले प्रथम वीर सेनानी थे। गिरिराज हिमालय की विशालता तथा अनन्त समुद्र की अगाधता, एक ऋषि का ज्ञान तथा एक वीर का साहस लिए हुए वे मेधावियों के मणिमुकुट, देशभक्तों के राजकुमार तथा क्रान्तिकारियों के सरताज थे, जिन्होंने ब्रिटिश शासन के घोर अत्याचारों को एक चट्टान की दृढ़ता तथा एक देशभक्त के सहज आनन्द से सह लिया। लोकमान्य का समूचा जीवन श्रीमद्भगवद् गीता के निष्काम कर्मयोग पर एक जीता-जागता भाष्य था, जिस का लिखित भाव भी भारतीय वाङ्मय का एक अमूल्य रत्न है।

भारत ने लोकनायक तो अनेक पैदा किए किंतु लोकमान्य एक ही हुए। जहाँ लोकमान्य लोक द्वारा वंदित हुए वहाँ बड़े-बड़े लोकनायकों द्वारा भी पूजित हुए।

महामनीषी डा. राधाकृष्णन् लिखते हैं, 'इस शताब्दी के प्रारम्भ में जब मैं विद्यार्थी था तब देश के नवयुवकों के लिए तिलक का नाम एक ज्वलन्त देशभक्ति, विलक्षण साहस, दुर्दमनीय संकल्प शक्ति तथा भारत की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व समर्पण करने की भावना का द्योतक था।' अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते हुए वे पुनः कहते हैं—'इतिहास साक्षी रहेगा कि तिलक के रूप में हमारे पास एक ऐसा महान् भारतीय था जिसे भारत के अतीत का गर्व था तथा भारत के भविष्य की उज्ज्वल आशा थी। वह ऐसा देशसेवी था जो निर्भीक तथा स्पष्टवादी था, जिसने भारतीय राष्ट्रवाद तथा स्वतन्त्र शांति के महान् कार्य का शिलान्यास किया। योगीराज अरविन्द घोष जैसे ऋषि भी लोकमान्य की प्रशस्ति में यशोगान किए बिना न रह सके—'उनका स्थान वहाँ है जहाँ भारतीय जनगण के केवल दो-तीन महापुरुषों को स्थान मिल सकता है जो जनगण की दृष्टि में उनकी राष्ट्रीय चेतना के अवतार तथा राष्ट्रीय आकांक्षाओं के ईश्वर प्रदत्त नेता हैं।....जहाँ जाति

के संकल्प ने एक बार पुकार कर कहा—इस व्यक्ति और उसके जीवन का अर्थ है जो कुछ भी मेरे हृदय तथा मेरे उद्देश्य में निहित है।'

पं. माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में तिलकजी के निधन पर भारतमाता कहती है—

अकुलाते-अकुलाते मैंने,
एक लाल उपजाया था,
था पंचानन 'बाल' खलोंका,
एक काल उपजाया था।
जिसने टूटे हुए देश के,
विमल प्रेम बन्धन जोड़े,
कसे हुए मेरे अंगों के,
कुटिल काल-बन्धन तोड़े।
खड़ा हुआ निशंक शिवाजी पर,
बलि होना सिखलाया,
जहां सताया गया, वहां वह,
शीश उठा आगे आया!
बागी दागी कहलाने पर,
जरा न मन में मुरझाया,
अगणित कंसों ने सम्मुख,
सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया!

तिलकजी की आकांक्षा पर श्री चतुर्वेदीजी लिखते हैं—

तू सहसा निर्भय गरज उठा,
काला पानी सह जाऊं मैं,
मेरे कष्टों से भारत मां,
के बन्धन टूटे पाऊं मैं?
बलि होने की परवाह नहीं,
मैं हूं, कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूं,
माता के हाथ स्वराज्य रहे!
दहला दूं सात समुद्रों को,
कहला लूँ हाँ, बल जान लिया,

लो अपना अपना राज्य करो,
अधिकार तुम्हारा मान लिया।

जगति को तिलकजी का सन्देश है—

माता के प्राण पुकार रहे,
संगठन करो, बस बढ़े चलो।
वह धन लाओ, जीवन लाओ,
आओ लाओ दृढ़, डोर लगे,
प्यारा स्वराज्य कुछ दूर नहीं,
बस तीस कोटि का जोर लगे!

तिलक वियोग में कवि कहता है—

क्यों आर्य-देश के तिलक चले,
क्यों कमजोरों के जोर चले,
तुम तो सहसा उस ओर चले।
यह भारत माँ किस ओर चले।
तेरी हुंकारों का फल था,
अगणित वीरों ने प्राण दिया,
राष्ट्रीय-शक्ति ने तुझसे ही,
अमृतसर में था प्राण लिया।

पं. नाथूराम शंकर के सुपुत्र श्री हरिशंकर शर्मा की श्रद्धांजलि भी बड़ी हृदयहारी है—

धन्य तुम तिलक लोक-अभिराम।
भारत के सौभाग्य-सूर्य हे,
गुण-गण-गौरव ग्राम
गीता गायक, राष्ट्र विधायक,
जन-नायक निष्काम।
राजनीति-रमणी, नय-नागर,
'राम' कहें या श्याम
धन्य तुम तिलक लोक-अभिराम।
निर्भयता की मन्जु मूर्ति प्रभु,
अटल, अचल, अविराम।

शुचि 'स्वराज्य' के सूत्रधार को,
बारम्बार प्रणाम!
धन्य तुम तिलक लोक-अभिराम।

महात्मा गांधी, जो तिलकजी के पश्चात् भारतीय राजनैतिक मंच के सर्वेसर्वा बन गए तिलकजी के प्रति आभार प्रकट करते हुए लिखते हैं—'हमारे युग के किसी अन्य व्यक्ति का जनता के हृदयों पर वैसा शासन नहीं था जितना कि तिलकजी का था। वह राष्ट्र के देवता थे। उनका शब्द सहस्रों के लिए राजाज्ञा के तुल्य था। भारत की भावी सन्तानें उनको एक ऐसे महापुरुष के रूप में याद करेंगी जो उन्हीं के लिए जिया और उन्हीं के लिए मर गया।'

काका साहेब कालेलकर उन्हें 'राष्ट्रीयता की भव्य विभूति' मानते हैं तो राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद का कथन है कि लोकमान्य के जीवन से सीखने योग्य पाठ है—

स्वतन्त्र चिन्तन तथा साहसपूर्ण कर्म करने की कला। पं. पन्त का कथन है—'लोकमान्य तिलक का भारतीय इतिहास में एक अद्वितीय स्थान है। उनके तुल्य महापुरुष पिछले हजारों वर्षों में भी हमारे देश में बहुत कम हुए हैं।' पण्डित नेहरू का कथन है, 'हम विराट विभूतियों को अपने सामान्य मापदण्डों से नहीं माप सकते। मुझे स्मरण है कि मेरे बालपने में तथा यौवन में, जब तक मैं प्रत्यक्ष उनके दर्शन नहीं कर चुका था, तब भी उनसे मैं कितना अधिक प्रभावित था।'

भारतीय स्वातंत्र्य की ज्योति को जीवित रखने वाले तेजस्वी तिलक के विषय में पूज्यवर साधु स्थाणुदेव लीलाराम वासवानीजी का कथन है—'लोकमान्य तिलक के जीवन से प्रायः यूनानी कथाओं के नायक वीर 'प्रोमिथियस' की याद आ जाती है। वह स्वर्ग से अग्नि चुरा कर मानवों के सुख के लिए धरती पर लाता है। देवता उससे रुष्ट हो जाते हैं। वे उसे चट्टानों से बांध देते हैं। वह यह सबकुछ इस विचार से सह लेता है कि उसने मानव की सेवा की है। इसी तरह भारत के साम्राज्यवादी देवों ने लोकमान्य को बार-बार बांधा, बन्दी बनाया। उस ने यह सबकुछ इस समाधान एवं खुशी के साथ सह लिया कि वह जनगण का सेवक है। अतः तिलक वर्तमान भारत के लिये ज्योतिर्धर बन कर आया था।'

एक अन्य कवि की श्रद्धांजलि कितनी भाव भरी है—

ओ, स्वराज्य के सिद्ध,
प्रजा सत्ता के भर्ता,
कौशल कोविद राज
दिव्य ग्रन्थों के कर्ता!

दे-भक्ति के गीत,
नीतिमत्ता के माली!
सद्‌गुण शील प्रभात स्वत्व
के मरीच-माली।
हे, बुद्धि तेज के विटपवर,
धृति कृति के अद्‌भुत बली!
नत मस्तक स्मृति की गुरो,
ग्रहण करो श्रद्धांजलि॥

श्री रघुवीर शरण मित्र की भावांजलि तिलकजी की गरिमा का उचित कीर्ति-स्तम्भ है—

अन्धकार में दीप जला कर,
तुम गीता का सार दे गये।
जो न मृत्यु से कभी मरेंगे,
तुम वे दिव्य विचार दे गये॥
अमर तुम्हारी क्रांति ज्योति है,
पारतंत्र्य के लिए काल तुम।
तिलक सृष्टि के माथे पर तुम,
स्वतंत्रता के भव्य भाल तुम॥
तुमने जग में शंख बजा कर,
सोई मानव-जाति जगा दी।
जिसमें स्वर्ण दमक कर निकला,
तुमने ऐसी आग लगा दी,
डूब रही थी नाव हमारी,
नाविक! तुम उस पार ले गए।
अन्धकार में दीप जला कर,
तुम गीता का सार दे गए॥

23 जुलाई 1960
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

लोकमान्य तिलक को प्रज्ञा का अमोघ वरदान

भारत की राष्ट्रीय जागृति के जनक, आधुनिक महाराष्ट्र के पंच प्राण, राष्ट्रीय यज्ञ के अध्वर्यु, स्वराज्य मन्त्र के मन्त्रद्रष्टा ऋषि, दैन्य-दास्य एवं अन्याय के मूल में प्रहार करने वाले पुणे के परशुराम, महाराष्ट्र केसरी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक सात्त्विक ऋषि, ओजस्वी वक्ता, दुर्धर्ष वीर एवं आदर्श कर्मयोगी होने के साथ-साथ एक ऐसी तत्त्व विवेचिनी सूक्ष्म बुद्धि के स्वामी थे जो विश्व के अन्तराल में छिपे हुए सत्य का उद्घाटन करने में समर्थ होती है।

लोकमान्य तिलक का जन्म 23 जुलाई 1856 को (आज से 125 वर्ष पूर्व एवं 1857 के स्वातंत्र्य समर के एक वर्ष पूर्व) तथा निर्वाण 31 जुलाई 1920 को (आज से 61 वर्ष पूर्व एवं प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के 9 वर्ष पश्चात्) हुआ था। एक भारतीय युद्ध एवं एक विश्वयुद्ध के बीच विश्व रंगमच पर उभरने वाला यह अलौकिक योद्धा विश्व के साम्राज्यवादी देशों को भारत की ओर से मुँह तोड़ उत्तर देने वाला इतिहासपुरुष सिद्ध हुआ।

भारत का मनोबल तोड़ कर इसे हताश-निराश करने के उद्देश्य से ब्रिटिश शासन एवं उसके संकेत पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ विषैले असत्य इतिहास के नाम पर बच्चों को जन्मघूंटी के समान पिलाना प्रारंभ किया।

1. भारत सदा से पराधीन रहा है अतः इसे स्वतंत्रता का कोई अधिकार नहीं। यह गोरी जातियों का दायित्व है कि अश्वेत जातियों को सभ्यता सिखावें।

2. आर्य लोग मध्य एशिया के मैदानों से भटकते हुए भारत में आ गये थे। इसका परिणाम बड़ा गम्भीर होता है। यदि भारतीय अंग्रेजों को कहते कि 'भारत छोड़ो' तो अंग्रेज कहते, 'तुम प्रथम आक्रमणकारी बन कर आये, बाद में यूनानी, फिर हूण, शक, फिर मुसलमान और अन्त में हम ब्रिटिश लोग आये। प्रथम आक्रान्ता को पहले निकलना चाहिये, अन्तिम को अन्त में।

3. वेद गड़रियों के गीत हैं। आर्य ऋषि गड़रिये थे जो अपनी भेड़ों के अजागण को चराते हुए नई हरी घास की खोज में भारत में आ पहुँचे। भेड़ों को पुकारने में जो वे अनर्गल उच्चारण करते थे वे ही वेदमन्त्र बन गये।

4. वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ नहीं है। यह ओल्ड टेस्टामेन्ट (यहूदियों की धर्म पुस्तक) के बाद में लिखे गये हैं।

5. भगवद्गीता मूलतः महाभारत का अंश न होकर न्यू टेस्टामेन्ट (ईसाइयों की बाइबिल) के सर्मन ऑन दी माउन्ट (ईसा का पर्वतीय उपदेश) से उधार ली गई है।

लोकमान्य तिलक ही भारतमाता के ऐसे महान् सपूत थे जिन्होंने इन पांचों आक्रमणों का अकेले ही बड़ा प्रबल प्रतिकार कर भारत एवं भारतीयता की लाज बचाई।

स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार

एक महान् केशरी के समान गर्जना करते हुए लोकमान्य तिलक ने विश्वभर के कान खोलते हुए घोषणा की—'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके ही रहेंगे', यह शब्द केवल शब्द मात्र ही नहीं हैं। यह स्वतंत्रता का एक महान् ओजस्वी मन्त्र है जो अपने भीतर एक महान् दर्शन को गुम्फित किये हुए है। इस स्वातंत्र्य दर्शन के द्रष्टा, लोकमान्य सचमुच एक सच्चे ऋषि थे। हमने स्वतन्त्र ही जन्म प्राप्त किया है तथा स्वतन्त्र ही मरेंगे। ईश्वर और प्रकृति ने हमें स्वतन्त्र पैदा किया है। इसका अर्थ है कि प्रकृति का विधान हमें स्वतन्त्र ही देखना चाहता है। इसलिए हमारा स्वतन्त्र रहने का अधिकार हमारे जन्म से ही स्वतःसिद्ध है, इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की अब आवश्यकता नहीं। इस स्वराज्य मन्त्र को पाकर भारतीय जनगण स्वातंत्र्य के दृढ़ संकल्प के साथ ऐसी वीर गर्जना करते हुए खड़ा हो गया जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का दिल दहल गया।

आर्यों का आदिदेश

विदेशियों ने भारत में आकर यह प्रचार प्रारम्भ किया कि आर्य लोग भी भारत में बाहर से आये हैं। संभवतः ये मध्य एशिया से ही खानाबदोश कबीलों की तरह अपनी भेड़-बकरियों को चराते हुए भारत की ओर आ गये। पश्चिम के कई सत्यहंता इतिहासकारों ने वेदों को 'गड़रियों का गीत' बतलाया। इस कुप्रचार के पीछे षड्यन्त्र यह था कि आर्यों को अपनी मातृभूमि से प्रेम न रहे तथा वे यह समझने लगें कि वे भी वैसे ही डाकू बन कर आये थे जैसे बाद में मुसलमान और अंग्रेज आये। लोकमान्य तिलक ने इस कुप्रचार को अपनी प्रज्ञा के लिए चुनौती समझा तथा निष्पक्ष भाव से वे इस तथ्य की खोज में लग गये। इस विषय में उनकी खोज दो स्तरों में प्रकट हुई।

पहली खोज के आधार पर उन्होंने यह स्थापित किया कि आर्य लोग सम्भवतः उत्तरी ध्रुव के निवासी थे। इस मत को उन्होंने 100 पृष्ठों की महान्

The Arctic home in the Vedas में प्रकट किया जिसे उन्होंने तीन मास से भी कम समय में अपने हाथों से लिख डाला था। उन्होंने ज्योतिष के आधार पर इस मत की स्थापना की। वेद में वर्णित देवताओं के छः मास के दिन तथा छः मास की रात्रि का स्पष्ट अर्थ उन्होंने उत्तरी ध्रुव पर होने वाले छः मास के दिन एवं छः मास की रात्रि में लगाया। इसी अर्थ में उत्तरायण देवताओं का दिन है तथा दक्षिणायन रात्रि। वहाँ सदा बर्फ जमी रहने के कारण ही सम्भवतः आर्य लोग अग्नि को देवता मानकर उसमें हवि डालते तथा यज्ञ करते थे। उष्णता देने वाले सूर्य को भी इसीलिए भगवान् कहा गया। उसी सविता देव की प्रशस्ति में गायत्री का गायन हुआ। भूगर्भ-शास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी पर ऋतुओं का तारतम्य बदलता रहता है सम्भवतः ध्रुव प्रदेश में भी कभी एक प्रकार का चिर वसंत था। तिलक का मत है कि बहुत पहले उत्तरी ध्रुव बर्फ से ढका था, बीच में वहाँ से बर्फ हट गई और नीचे के प्रदेश की ओर बढ़ गई। तब वहाँ मधुर ऋतु हो गई। पुनः लगभग 20,000 वर्ष हुए उत्तरी ध्रुव पुनः हिमाच्छन्न हो गया। तब आर्यों को वहाँ से अपना घर छोड़कर सप्तसिन्धव की ओर आना पड़ा।

लोकमान्य तिलक ने अपनी बाद की खोजों द्वारा अपने उपरोक्त मत का स्वयं ही परिष्कार कर लिया था। वे स्वयं भी स्वीकार करने लगे कि आर्य लोग सप्तसिन्धव के मूल निवासी थे। ऐसा उनके कुछ लेखों तथा डायरी में लिखे कुछ संकेतों से भी प्रमाणित होता है जो यथोचित प्रकाश में नहीं आ सके। बाबू सम्पूर्णानन्द ने अपनी महान् रचना 'आर्यों के आदिदेश' में यही मत स्थापित किया है कि आर्य लोग मूलतः सप्तसिंधु (उत्तर भारत) के ही निवासी थे। डा. अमरनाथ झा ने प्रमाणित किया है कि उत्तरी ध्रुव भी धीरे-धीरे बदलता रहता है और आज से 20,000 वर्ष पूर्व यह सम्भवतः भारत में ही था। पर दोनों विद्वानों ने अपनी खोजों के लिए लोकमान्य के अन्वेषण का आभार स्वीकार किया है। डा. सम्पूर्णानन्दजी ने यह माना है कि वेद के अन्तर्साक्ष्य द्वारा आर्यों के आदिदेश की खोज करने की दिशा में सबसे पहले मार्गदर्शक लोकमान्य ही थे। उन्हीं की दर्शायी हुई खोज की दिशा में आगे चलने से हमें अपने राष्ट्र की जन्मभूमि के दर्शन प्राप्त हुए हैं। अतः इस दिशा में किये गए सभी अन्वेषणों का मूल श्रेय तेजस्वी तिलक की तेजस्वी बुद्धि को है। अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करके हमारा राष्ट्र महाकवि प्रसाद की वाणी में गाने लगा—

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यही।
हमारी जन्मभूमि थी यहाँ, कहीं से हम थे आये नहीं॥
जिएं तो सदा इसी के लिए, यही अभियान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें यह सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

वेदों की प्राचीनता की खोज

भारत का सदा से गौरव रहा है कि संसार जब अंधकार के गर्त में खोया हुआ था, जब अमरीका का दुनिया के मानचित्र पर पता ही नहीं था, जब यूरोप के कच्चा मांस खाने वाले अर्द्ध-बर्बर लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना ही नहीं सीखा था तब भारत के ऋषि हाथ में वेदज्ञान की मशाल लेकर दुनिया को आलोक का पथ दिखा रहे थे। भारत को पूर्णतया दास बनाने के लिए अंग्रेजों ने यह कुप्रचार करना आरंभ किया कि वह (वेद) विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय नहीं है। उन्होंने यह कहना शुरू किया कि वेद अधिक से अधिक ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये होंगे। इस कथन के पीछे यह एक भयंकर षड्यंत्र था कि भारतीयों के मन में यह बिठा दिया जाय कि वेद ओल्ड टेस्टामेंट (यहूदियों की धर्म पुस्तक) के बाद लिखे गये हैं। गीता न्यू टेस्टामेंट (ईसाइयों की धर्मपुस्तक) के बाद लिखी गई है। यह भारतीयों के स्वाभिमान को खुली चुनौती थी। लोकमान्य ने इस चुनौती का एक प्रबल उत्तर अपने लोक विश्रुत ग्रन्थ 'औरायण' (Orion) में दिया। औरायण यूनानी भाषा में एक नक्षत्र का नाम है जिसे वैदिक वाङ्मय में अग्रायण और मृगशिरस कहा जाता है। तेजस्वी तिलक ने अपनी सूक्ष्म तत्त्व विवेचिनी मेधा द्वारा इस महान् तथ्य का उद्घाटन किया है कि आर्यों की तीन मुख्य शाखायें जो ईरान, यूनान और भारत में फैली हुई हैं, प्रारम्भ में एक ही परिवार के रूप में रहती थीं।

उस काल की कुछ ऋचाएँ ऋग्वेद में हैं। जो जैसी की तैसी ही ईरानी और यूनानी परंपराओं में भी सुरक्षित हैं। ऋग्वेद की कुछ ऋचाएँ अन्तर्साक्ष्य के रूप में यह गवाही देती हैं कि जिस समय वेदों की ऋचाएँ लिखी गईं उस समय बसंत ऋतु से वर्ष प्रारम्भ होता था और वर्ष का प्रथम दिवस ओरायन में पड़ता था।

लोकमान्य ने वैदिक वाङ्मय के काल को कई भागों में विभक्त किया है—

1. अदितिकाल या पूर्व ओरायन काल (लगभग 6000 ई. पूर्व से 4000 ई. पूर्व)—इस काल में आधे गद्य और आधे पद्य के मन्त्र पढ़े जाते हैं। ईरानी तथा यूनानी आर्यों ने उस काल की परम्परा को भुला दिया है क्योंकि उन्होंने उसी संवत्सर को याद रखा जो भारत में उस समय प्रचलित था जब वे भारत छोड़ कर गये। भारतीयों ने उक्त परम्परा को वेदों में जीवित रखा।

2. ओरायन काल (लगभग 4000 ई. पूर्व से 2530 ई. पूर्व तक)—जब वसन्तारम्भ आर्द्रा नक्षत्र में होता था तब से लेकर उस काल तक जब वह कृतिका में होने लगा। ऋग्वेद में उस काल के बहुत से सूक्त हैं। ईरानी तथा यूनानी आर्यों ने इसी काल के प्रायः अन्त में ही भारत छोड़ा था तथा उक्त परम्परा को याद रखा।

3. कृतिका काल (लगभग 2500 ई. पूर्व से 1900 ई. पूर्व तक)—यह तैत्तिरीय संहिता और कई ब्राह्मण ग्रन्थों का काल है। इस काल में ही संहिताओं का संग्रह हुआ। इसी काल में चीनियों ने भारत से हिन्दू नक्षत्र पद्धति सीखी।

4. कल्पसूत्रों का काल (2400 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व (बुद्ध काल) तक)—इससे स्पष्ट है कि वेद के अन्तर्साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि वैदिक संवत्सर परिगणना का काल 6000 ई. पूर्व के लगभग है, वैदिक पंचाग (कैलण्डर) निर्माण से पूर्व भी आर्य सभ्यता अवश्य रही होगी। अतः वेदकाल अतिप्राचीन तथा कम से कम 7-8 हजार वर्ष प्राचीन अवश्य है।

लोकमान्य की इस अद्‌भुत खोज के सम्मुख मैक्समूलर सहित बड़े-बड़े पश्चिमी विद्वान झुक गये तथा भारतवासियों को अपना खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त हो गया।

भारत तथा चैल्डिया (प्राचीन बैबिलोनिया)—लोकमान्य अपनी नानाविध खोजों में भारत तथा चैल्डिया के प्राचीन वाङ्मय में अद्‌भुत समानता को प्रकाश में लाये। वैदिक संस्कृत का 'अप' शब्द जिसका अर्थ जल है, चैल्डिया में अपसु हो गया और अरबी में आब हो गया। अप्सु वृत्रासुर का भी नाम है। वृत्र पर विजय के कारण इन्द्र को ऋग्वेद में अप्सुजित कहा है। वैदिक 'ऋतु' ही चैल्डिन भाषा का 'इतु' हो गया है। जिसका अर्थ मौसम या मास है। भारत के समान चैल्डिया के प्राचीन धर्म में सात आकाशों तथा पातालों का वर्णन है। चैल्डिन वेद भी भारतीय वेदों के प्रकारान्तर हैं।

गीता का सन्देश—माण्डले जेल में कोयले से जेल की दीवार पर लोकमान्य ने जो एक महान् ग्रन्थ लिखना शुरू किया वह उनकी प्रतिभा एवं विद्वत्ता का मेरुदण्ड बन गया।

योग को भोग में निहित रखो। सच्चा योग भोग के भीतर भी अक्षुण्ण रहता है। वह गीता का जीवन दर्शन है।

इस दिशा में सबसे बड़ा काम तिलक का जिनका गीता विषयक ग्रन्थ कर्मयोग शास्त्र अभिनव हिंदुत्व का सर्वश्रेष्ठ आचार ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में राममोहन से लेकर विवेकानंद तक भारतीय दर्शन में जो विपुल मंथन हुआ था, कर्मयोग शास्त्र में हम उसका तर्कसम्मत दार्शनिक रूप देखते हैं। यह ग्रन्थ हिन्दुत्व की उस अवस्था का परिचायक है जबकि यूरोपीय संस्कृति की टकराहट से उत्पन्न कम्पन समाप्त हो जाता है एवं हिन्दुत्व नवीन जन्म ग्रहण करके अपने अनुयायियों को नई परिस्थितियों से लोहा लेने का उपदेश देता है। तिलकजी प्रधानतया समाज एवं राजनीति के पुरुष थे तथा विश्ववाद से उन्हें अधिक प्रेम नहीं था। वे हिन्दुओं

की पतनशीलता से दुःखी थे। वे पराधीनता से क्षुब्ध थे। वे हिन्दू जाति की निवृत्ति भावना से आकुल और उसकी कर्तव्यविमुखता से अधीर थे। अतएव गीता की व्याख्या के बहाने उन्होंने समस्त हिन्दू दर्शन को मथ कर उसे नवीन कर दिया तथा हिंदू जाति में वह प्रेरणा भर दी जिससे मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय पाता है, जिससे कर्तव्य-अकर्तव्य के निश्चय में दार्शनिक सूक्ष्मताएँ उसके मार्ग का अवरोध नहीं कर पातीं तथा जिससे वह परिस्थितियों के अनुसार धर्माधर्म का ठीक-ठाक समाधान कर पाता है।

लोकमान्य का अपना जीवन ही गीता के कर्मयोग पर एक जीवित-जागृत भाष्य था।

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ 9/27

गीता के इस महावाक्य के अनुसार ही लोकमान्य ने जो कुछ खाया-पीया, जो कुछ हवन किया, जो कुछ दिया और जो कुछ तप किया—सभी कुछ भगवान् को समर्पित कर दिया। शैशव की तोतली वाणी से उन्होंने गीता गाना प्रारम्भ किया जब एक-एक श्लोक याद करने पर उन्हें उनके दादा एक पाई इनाम में देते थे। जीवन की अंतिम घड़ी में भी वे भगवद्गीता का गायन कर रहे थे—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ 4/7

उन कर्मवीर कुल-भालकुंकुम लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की अनन्त अलौकिक प्रज्ञा को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम।

30 जुलाई 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

मेरे जीवन का कोई भी दिन ऐसा नहीं गया है, जिस दिन मैंने गीता के श्लोकों पर मनन न किया हो।

—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

लाला लाजपत राय का जीवनदर्शन

भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता के मन्त्र को इतिहास पटल पर अपने लाल रक्त से अंकित करने वाले बलिदानी वीरों में पंचनद-पंचानन, पुण्यश्लोक लाला लाजपत रायजी का पवित्र नाम सदा अमर रहेगा। जो आत्म शक्ति किसी भी आसुरी शक्ति के सम्मुख झुकती नहीं, वरन् अपने प्रचण्ड बल का प्रभाव आने वाले अनेकों युगों पर छोड़ जाती है, उसी अमर आत्मतेज के अवतार थे पुरुष-सिंह लाला लाजपत राय। 28 जनवरी सन् 1865 ई. में जगराओं नामक छोटे से गांव में लाला राधाकृष्ण के गृह में इस कुलदीपक का जन्म हुआ। कौन जानता था यही भाग्यवान बालक उस साम्राज्य से टक्कर लेने के लिए पैदा हुआ था जिस पर कभी सूर्य अस्त नहीं होता। यही तेजस्वी प्राणी अपनी ऊँची शिक्षा तथा परिपक्व अनुभव सम्पादन कर लोक सेवा तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता के पावन प्रांगण में नर केसरी के समान कृत-संकल्प हो कर खड़ा हो गया। कई आँधियाँ आयीं और कई बवण्डर उठे, संकट की काली घटाएँ घिर आईं और कष्टों के काले पहाड़ भी टूटे। पर, हिमालय के समान अचल-अविचल एवं सागर के समान गहन, गम्भीर रहने वाले इस महापुरुष की दृढ़ता एवं अगाधता के सम्मुख सब विपत्तियाँ स्वयं विपन्न हो रुदन करने लगीं एवं सभी भय स्वयं भयभीत हो कर भाग चले।

प्रत्येक महान् जीवन कुछ महान् शाश्वत सिद्धांतों पर आधारित होता है। यदि उन सिद्धान्तों में कोई बुद्धिसंगत क्रम हो तो उसे हम उस महापुरुष का जीवन दर्शन (Philosophy of Life) या जिन्दगी का फलसफा कहते हैं। उस महापुरुष के चारित्रिक गौरव एवं वैभव की कुंजी उस के जीवन दर्शन में ही मिलती है। वह महापुरुष मनुष्य किसे समझता है, जीवन की परिभाषा क्या करता है और उस का ध्येय क्या समझता है? ध्येय-प्राप्ति के लिए किन साधनों को महत्त्व देता है, उस का धर्म क्या सिखाता है, उस के लिए देश का क्या स्थान है, स्वाधीनता का मूल्य क्या है, सामाजिक कल्याण तथा नैतिक आदर्श क्या हैं? इत्यादि प्रश्न जीवन-दर्शन के भिन्न-भिन्न अध्याय हैं।

आदर्श मानव

प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार एवं महापुरुषों के पारखी श्री रोमां रोलां ने

लिखा है—'मैं समझता हूँ यदि स्वामी दयानन्द आज हमारे बीच में जीवित होते तो वह लाला लाजपत राय के रूप में आर्य समाज के जीवित-जागृत चित्र को देख कर पुलकित हो उठते। लाला लाजपत राय वीर थे। उन्होंने सत्य एवं न्याय की रक्षा में अपना जीवन अर्पण किया हुआ था।'

स्वयं स्वामी दयानन्द के निम्नलिखित वाक्य उन पर पूर्णतया चरितार्थ होते थे—'मनुष्य उसी को कहना जो अत्याचारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।....इस काम में चाहे उस को दारुण दुःख प्राप्त हो अथवा प्राण भी चले जायें परन्तु वह इस मनुष्य रूपी धर्म से पृथक् कभी न होवे।'

मनुष्य की इस परिभाषा को लालाजी ने न केवल अपने जीवन-दर्शन में मान्यता दी वरन् इसे स्वयं अपने जीवन पर चरितार्थ कर दिखाया।

वे अपनी आस्था प्रकट करती हुई वाणी में कहते हैं—'स्वामी दयानंद मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है।'

17 नवम्बर, 1928 को उनका ब्रिटिश साम्राज्य के निर्मम लाठी-प्रहार से होने वाला बलिदान मनुष्यता की इसी परिभाषा की सत्यता सिद्ध करने के लिए एक अपूर्व शहादत थी।

स्वाधीनता के देवदूत

स्वाधीनता का भाव उनकी नस-नस में भरा था। उनकी घोषणा है, 'हम केवल एक ही धर्म को जानते हैं—मातृभूमि का प्यार। हम उसकी सेवा का एक ही मार्ग जानते हैं—उसके स्वातंत्र्य के लिए संगठित एवं अनवरत परिश्रम। वह ही हमाारी अर्चना की पात्र है। उसी जन्मभूमि की पूजा के द्वारा ही हम ईश्वर-प्राप्ति कर लेंगे।'

पराधीनता की लानत

लालाजी की स्पष्टोक्ति थी, 'तुम धीरे-धीरे गुलाम बनाए जा सकते हो पर धीरे-धीरे स्वाधीन नहीं किए जा सकते।'

वे अपनी महान् रचना 'अनहैप्पी इण्डिया' की प्रारंभिक पंक्तियों में ही कहते हैं, 'किसी अन्य देश की राजनैतिक गुलामी से बढ़कर बड़ी लानत संसार में दूसरी नहीं है। किसी आततायी, आक्रमणकारी राजा की प्रजा को कुचल कर चलने वाली सेनाओं द्वारा किया हुआ विध्वंस इतना अनर्थकारी नहीं जितना कि देश के पूर्णतया गुलाम बन जाने से प्रजा का धीरे-धीरे समूची आजादी को खो देना और उन पर संगीनों के भय से शासन चलते रहना।'

स्वतंत्रता का मूल्य

पंजाब केशरी की ललकार है, 'एक शहीद का खून ही वह खुराक है जिस पर स्वतंत्रता का कोमल बिरवा फलता-फूलता है।'

आत्मा की हत्या कोई नहीं कर सकता

हुतात्माओं एवं बलिदानी वीरों को मानो फूल चढ़ाते हुए लालाजी कहते हैं—'जल्लाद की फांसी का रस्सा, हत्यारे का कुठार या तोपची का तोप का गोला केवल एक व्यक्ति के व्यक्तिगत प्राण को हरता है, किन्तु उसके परिणामस्वरूप सामूहिक जीवन की भावना और तीव्र हो उठती है। देश-निकाले, काले पानी, काल कोठरी, दारुण दुःख, संपत्तिहरण इत्यादि सामान्य उपाय हैं जो एक आततायी स्वाधीनता का गला घोंटने और स्वातंत्र्य प्रेमियों का समूल नाश करने के लिए प्रयोग करता है, परन्तु अभी तक ये सभी उपाय न स्वतंत्रता को और न उनकी इच्छुक आत्माओं का हनन कर सके हैं।'

सम्मानपूर्ण जीवन

लालाजी गौरव से जीना जानते थे। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है—

'बहुत लोग यह समझते हैं कि स्वाधीनता का जीवन केवल सांस लेना मात्र है, किन्तु बिना सम्मान के जीवन उस से भी पतित है, वह एक घोर कलंक है।'

सरलता एवं सच्चरित्रता

लालाजी सरल जीवन एवं उच्च विचार के पक्षपाती थे। उनका कथन है—

'भारत का एक साधारण मजदूर इंग्लैंड के बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ से अधिक ईमानदार है। वह न किसी को लूटता है, न धोखा देता है न किसी पर दबाव डालता है। वह परिश्रम करता है और सचाई का जीवन बिताता है।'

श्रम का गौरव

पंचनद-पंचानन कर्म को ही धर्म मानते थे। श्रम के गौरव पर उन का मत है—

'किसी भी प्रकार का श्रम जिस से समाज की भलाई होती है और जिस की समाज को आवश्यकता है, कभी भी निन्द्य नहीं है।'

आत्मा की वाणी

लालाजी सब से बढ़ कर अपनी ही अन्तरात्मा पर विश्वास करते थे। उनके निम्न विचार स्वर्ण-अक्षरों में लिखने योग्य हैं—

'मेरा मज़हब हक-परस्ती है, मेरी मिल्लित कौम-परस्ती है, मेरी इबादत खलक-परस्ती है, मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है, मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मन्दिर मेरा दिल है और उमंगें सदा जवान हैं।'

श्रद्धांजलि

श्री ई. डब्ल्यू. बिल्काक्स ने पंजाब केसरी की महिमा में लिखा—

'यौवन ने उसे बहादुर, समय ने राजनीतिज्ञ, प्रेम ने मानव घोषित किया। मृत्यु ने उसे शहादत का ताज पहनाया—इस प्रकार मंजिल तय करता गया और मानव जीवन में सम्भव सब प्रकार की विभूति एवं यश को उस ने पा लिया।'

लाला लाजपत राय पंजाब की लाज, पत और राय, तीनों ही थे। उनके पश्चात् यह पंचनद प्रदेश जैसे अनाथ सा ही हो गया है। आज उन की पावन जन्म-जयन्ती के उपलक्ष में हम अपने सरस हृदय की कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ उन्हीं महान् आत्मा के चरणों में समर्पित करते हैं—

ऐ शहीदे कौमो मिल्लत,
तेरे जजबों के निसार।
तेरी कुर्बानी के चर्चे,
गैर की महफिल में हैं।

29 जनवरी 1958
दैनिक 'वीर अर्जुन' जालन्धर में प्रकाशित

अपने अस्तित्व और आदर्श से च्युत करने वाली उदारता, उदारता नहीं; अपितु हृदय की तुच्छ दुर्बलता है।

उदारता क्या है? कर्तव्य से विमुख करने वाला मनोभाव उदारता कहने योग्य नहीं है। उदारता के नाम पर पशुता और कायरता न पनपे। जो पशुता और कायरता को जन्म दे वह उदारता नहीं है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

पंचनद-पंचानन का राजनैतिक दर्शन

स्वतन्त्र भारत में श्वास लेने वाले हम भारतीयों का प्रत्येक श्वास उन महान् बलिदानी वीरों का कृतज्ञ है जिन्होंने अपने जीवन-रुधिर से स्वतंत्रता के कोमल बिरवे को सींचा। आज से 30 वर्ष पूर्व 17 नवम्बर 1928 के दिन ब्रिटिश साम्राज्य के कुत्तों ने भारत के एक ऐसे महान् शेर को मार डाला जो 63 वर्ष तक ब्रिटिश साम्राज्य के इस्पाती पिंजरे में रहता हुआ भी अपनी दहाड़ों से पिंजरे की जड़ें हिलाता रहा। उसकी जो गर्जना इंग्लिस्तान के फिरंगियों के भी कलेजे कंपा देती थी आज भी सुप्त भारतीयों के हृदय की दुर्बलता को झाड़ कर उन्हें नवप्राण से भरकर खड़ा कर सकती है।

लाला लाजपतराय का राजनैतिक दर्शन हमें आज के राजनैतिक भ्रष्टाचार के युग में सही मार्गदर्शन देने वाला दर्शन है।

स्वदेश तथा स्वधर्म

लालाजी स्वदेश तथा स्वधर्म को एक ही तत्त्व के दो रूप मानते थे। उन्होंने देश-पूजा तथा देव-पूजा को एक साथ निभाया। उनके अपने शब्द हैं—'हम केवल एक ही धर्म को जानते हैं—मातृभूमि का प्यार। हम उसकी सेवा का एक ही मार्ग जानते हैं—उसके स्वातंत्र्य के लिए संगठित एवं अनवरत परिश्रम। वह ही हमारी अर्चना की पात्र है। उसी जन्मभूमि की पूजा द्वारा ही हम ईश्वर-प्राप्ति कर लेंगे।'

स्वतंत्रता की तड़प

लालाजी स्वाधीनता के जीवित-जागृत अवतार थे। पराधीनता के विचार से ही उन जैसे स्वातन्त्र्य प्रेमियों का दम घुटने लगता था। उनकी स्वाधीनता की तड़प इन शब्दों में प्रकट हुई—'तुम धीरे-धीरे गुलाम बनाए जा सकते हो पर धीरे-धीरे स्वाधीन नहीं किए जा सकते।' स्पष्ट ही लालाजी गांधीजी के धीमे-धीमे चलने वाले लंबी अवधि के कार्यक्रम से सहमत नहीं थे। वे तो एक ही हल्ले में देश को स्वाधीन देखना चाहते थे। इस कार्य में वे विलम्ब को घोर पाप समझते थे।

वीर भोग्या वसुन्धरा

लालाजी सचमुच शेर थे। उन जैसे वीर पुरुष ही वसुन्धरा को भोग सकते हैं। वे मूर्तिमान वीर थे। जगराओं के वैश्य कुल में सच्चे क्षत्रियत्व के अवतार बन कर वे प्रकट हुए। राष्ट्रीय क्षेत्र में लालाजी कायरता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं—'छोटी अवस्था में गुलिस्ताँ के जिस शेर ने मेरी स्मरण शक्ति को पकड़ा और मेरी कल्पना पर अधिकार जमाया, वह था—

आं न मन बाशम्
कि रोज़े जंग बीनी पुश्तमन्।
ईमनम् कां दरमियाने
खाके खूं बीनी सरे॥

अर्थात्, मैं वह नहीं हूँ कि लड़ाई के दिन तू मेरी पीठ देखे। मैं वह हूँ कि मिट्टी और खून के बीच मेरा सिर देखे।' सचमुच उस वीर ने अपने बचपन में गाए हुए शेर को अपने जीवन पर चरितार्थ कर दिखाया।

गरम दल-नरम दल

कांग्रेस के दो दलों—नरम दल और गरम दल में से लाला लाजपत राय गरम दल के अग्रणी थे। उन्हें नरम दल की ढुल-मुल नीति कभी पसन्द नहीं थी। उनका मत था कि आजादी भीख मांगने से नहीं मिल सकती, वह वीर पुरुषों को अपने बाहुबल से विजय करनी पड़ती है। इस विषय में वे गांधीजी के अहिंसा मार्ग को केवल कापुरुषता का नैतिक ढोंग मानते थे। लाल-बाल-पाल की जो त्रिपुटी गरम दल की सर्वेसर्वा थी उसमें लालाजी का नाम सबसे प्रथम आता है।

शांति मार्ग-क्रांति मार्ग

पंजाबकेशरी एक महान् क्रांतिकारी नेता थे। गांधीजी के शांति के मार्ग में वे विश्वास खो चुके थे। उनकी हुँकार है, 'आखिरकार क्रांति कोई बहुत भयानक वस्तु नहीं है। यह एक प्रकृति का प्यारा विधान है जिसके बिना न प्राकृतिक और न मानवीय कार्य-व्यवहार में प्रगति सम्भव है। क्रान्ति सत्ताधारियों के लिए सदा एक भय रही है फिर भी यह उनकी सारी दमन योजनाओं का तिरस्कार कर समय-समय प्रकट होती रही है।

स्वाधीनता का मूल्य—खून

पंजाबकेशरी की महान् ललकार है—'एक शहीद का खून ही वह खुराक है जिस पर स्वतंत्रता का कोमल बिरवा फलता-फूलता है।' जहाँ भगतसिंह जैसे बलिदानी वीरों के कार्यों को गांधीजी हिंसा-हिंसा' कहकर कोसते रहते थे वहीं लालाजी की त्याग, यज्ञ और बलिदान की भावना कितनी स्तुत्य है!

मानो भगतसिंह तथा सुभाष बाबू की महान् क्रान्तियों के विषय में भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने कहा था—'यदि सरकार इसी प्रकार व्यवहार करती रही तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि जवान हमारे हाथों से निकल जाएँ और देश की आजादी के लिए जो चाहें, करें। मैं नहीं जानता कि मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूँगा या नहीं। लेकिन यदि वह क्रान्ति का दिन आ गया तो मेरी आत्मा उस संघर्ष में पीछे से तुम्हें आशीर्वाद देगी।'

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि लाला लाजपत राय कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति के कारण उसमें श्रद्धा खो बैठे थे तथा पंडित मदनमोहन मालवीय के संग मिलकर उन्होंने हिन्दू राष्ट्रवाद का नाद बजाया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—'हिन्दी-उर्दू के झगड़े ने मुझे हिन्दू राष्ट्रीयता का पहला पाठ पढ़ाया और मेरी तबीयत ने उस समय जो पलटा खाया उसमें फिर कमी नहीं हुई। प्रारंभिक संस्कार और पिता की शिक्षा से तो मेरी सहानुभूति उर्दू के साथ होनी चाहिए थी, निजी लाभ भी मेरा इसी में था क्योंकि मैं हिन्दी अक्षर तक न जानता था। फारसी के पढ़ने में मैंने कई साल लगाए थे और उर्दू साहित्य की मुझे अच्छी जानकारी थी। हिन्दी की विजय में स्पष्ट ही मेरी निजी हानि थी। किन्तु ज्योंही मुझे निश्चय हो गया कि राष्ट्रीय मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है, मैंने अपने लाभ और हानि के विचारों को एक ओर रख दिया और हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।'

सच्चा हिन्दू

लालाजी की आत्मकथा स्वयं एक अन्य कहानी सुनाती है—'मैं इन दिनों कालेज में भी फारसी और अरबी पढ़ा करता था। मौलवी मुहम्मद हमारे उस्ताद थे। एक दिन दर्जे में वे हिन्दी के पक्षपातियों की खिल्ली उड़ाने लगे और बंगालियों की हंसी करने लगे।....वे सदा ईरान की प्रशंसा किया करते थे कि मेरा वतन तो ईरान है, मेरा जी चाहता है कि वहाँ जा रहूँ। जब उन्होंने बंगालियों पर हमला किया तब तुरंत मेरे मुँह से निकला—मौलवी साहब! बंगाली यद्यपि पंजाब के रहनेवाले नहीं, फिर भी हिन्दू तो हैं। किन्तु आप तो मुसलमान हैं और ईरानी होने का दावा करते हैं। यदि बंगाली सज्जनों को पंजाब के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं तो बतलाइए आपको यह अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ....मैंने फारसी और अरबी पढ़ना बन्द कर दिया।....पण्डित गुरुदत्त मुझे संस्कृत के पंडित

के पास ले गए और बोले, 'पण्डितजी! यह लो, नया शिष्य लाया हूँ। अब तक मुसलमान था अब हिन्दू हुआ है।' पण्डितजी हंस पड़े। मेरे जीवन की यह पहली घटना थी जिसने मुझे पक्का हिन्दू बनाया और मुझे अन्त तक इस घटना की ओर खेद से दृष्टि डालने का कोई अवसर नहीं हुआ।'

संस्कृति रक्षण

लालाजी भारतीय संस्कृति के महान् रक्षक थे। गो-माता की रक्षा तथा गोवध बन्द कराने के लिए उन्होंने जीवन भर परिश्रम किया। उन्होंने शिवाजी तथा प्रताप की जीवनियाँ लिख कर देश के नौजवानों को सांस्कृतिक महापुरुषों का परिचय कराया। ये स्वयं स्वामी दयानन्द को अपना गुरु मानते थे और विश्व में आर्य संस्कृति के प्रसार के लिए कृत-संकल्प थे।

संस्कृति निर्माता

लालाजी भारत के भाग्यनिर्माता थे। वे कहते—'हमने अपना आज कुर्बान कर दिया है ताकि आपका आने वाला कल अधिक उज्ज्वल हो सके। तथा आगे आने वाली अनन्त पीढ़ियाँ सुखपूर्वक सम्मान का जीवन व्यतीत कर सकें।'

आज का पंजाब

आज पंजाबकेशरी का प्यारा पंजाब क्षत-विक्षत पड़ा है, लालाजी की सिंह-गर्जना थी—

मगर यह बात कहने में
न चूके हैं न चूकेंगे,
लहू देंगे मगर इस देश की
मिट्टी नहीं देंगे॥

आज पंजाब तो बंट गया है किन्तु पंजाबियों के हृदय भी बंटे हुए हैं। लाला लाजपत राय के पश्चात् पंजाब की लाज लुट गई है या नष्ट हो गई है और बात में कोई बल नहीं रहा। क्या पंचनद-पंचानन की ठण्डी चिता से आज 30 वर्ष पश्चात् भी कोई ज्योति ज्वाला उठकर देश का मार्गदर्शन करेगी?

17 नवम्बर 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

शहीद के खून की पुकार

पंजाब प्राण प्यारे!
भारत नयन सितारे!
वर वीर-केष-वारे!
नेता बड़े करारे—
हा! आज दिव सिधारे—
वे 'लालपत' हमारे—
जो लाज, पत हमारी
रखने यहां खड़े थे॥

श्री प्रताप नारायण कविरत्न ने पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के ऐतिहासिक बलिदान दिवस पर (17 नवम्बर 1928 के दिन) जो गीत गुनगुनाया वह आज भी कितना प्रेरणादायक है। कवि प्रवर आगे कहते हैं—

क्या 'लाजपत' यहां है—
या 'लाजपत' वहां है।
हा! लाज, पत तहां है,
बस 'लाजपत' जहां है।

जहाँ लाला लाजपत राय हैं वहीं पंजाब की लाज, पत और राय है। कवि रोकर अश्रु विगलित वाणी में गाता है—

हे देश के दुलारे!
तुम तो भला सिधारे—
हम दीन मौन धारे
किस के रहें सहारे?
है दुःख आज मारे,
हम दैव के हैं मारे—

हे 'लाजपत' हमारे—
आजा हृदय हृदय में॥

पंचनद पंचानन लाला लाजपत राय के निधन पर योगीराज अरविंद घोष ने कहा था—'ऐ पंजाबियो! शेरों की सन्तान! जागो और उन्हें बता दो जो तुम्हें मिट्टी में मिला देना चाहते हैं कि एक लाजपत को छीनने के बदले तुम सौ लाजपत पैदा कर सकते हो। सौ गुना और बल के साथ सिंह गर्जना करो—जय हिन्दुस्तान।'

शहीद के लाल रक्त को सम्बोधन कर भगवान् दीन जैसे सन्त कवि भी बोल उठे—

चढ़ रहा है हर जुबाँ पर
अब जुनूने लाजपत।
क्या कोई तूफान लाएगा
वह खूने लाजपत।
जान क्या शय है
भला हुब्बे वतन के सामने।
यह नसीहत दे रहा है
हमको खूने लाजपत॥

एक अज्ञात नामा कवि ने चीत्कार वाणी में गाया—

वह पंजाब केसरी है?
जो रहा निरन्तर जाग्रत;
उन्निन्द्र कूटस्थित अर्ध शताब्दि समाप्त करी।
भूतल पर जिसके चरण चिह्न धंस गए।
अमर से हुए।
पंजाब केसरी वही।
यहां सोता है शिशु-सा।
सुखद नींद में,
अरी उठा दे वसुन्धरे!
यह बाघ हमारा रक्षक है।

लालाजी के बलिदान पर श्रीमती एनी बीसेन्ट ने लिखा कि यदि इंग्लैण्ड के किसी नेता मि. बाल्डविन या मि. मेकडानल्ड की इस तरह हत्या की जाती तो आज अंग्रेज जनता क्या करती? क्या उनके क्रोध से धरती-आसमान न कांप उठते? फिर करोड़ों मनुष्यों के प्यार और आदर के पात्र लालाजी को क्या देश यों ही भूल जाएगा?

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा, 'उनकी आकस्मिक मौत से राष्ट्र पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है; और इससे प्रत्येक देशभक्त की वैयक्तिक हानि हुई है।' नेताजी सुभाष ने कहा—'वे अपनी सभी सम्पत्ति और प्राण तक भी देश पर न्योछावर कर गए। महान् पुरुष इसी प्रकार जीते और मरते हैं।' भाई परमानन्दजी ने कहा—'मैंने लालाजी के चरणों में देश भक्ति का पाठ पढ़ा है। लालाजी के स्वर्गवास से मेरा संरक्षक जाता रहा।'

प्रसिद्ध देशभक्त, देशबंधु चितरंजनदास की पत्नी श्रीमती वासन्ती देवी ने उत्तेजना से कांपते हुए होंठों के साथ कहा—'मैं जब यह सोचती हूँ कि कमीने और हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को जो इतना वृद्ध इतना आदरस्पद और भारत भूमि के 30 करोड़ नर-नारियों का इतना प्यारा था, जब मैं सोचती हूँ तब लज्जा और आत्मसम्मान के भावों से उत्तेजित होकर कांपने लग जाती हूँ। क्या देश का यौवन और देश का मनुष्यत्व आज भी जीवित है? क्या वह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सित कांड की धधकती हुई लज्जा और ग्लानि अनुभव करता है? मैं भारत भूमि की एक स्त्री इसका उत्तर चाहती हूँ।'

(अपूर्ण)

हे भारत भूमि! तेरे चरणों पर मैं अपना मन अर्पण कर चुका हूँ। अब अपना व्यक्तित्व और वैभव अपनी कला और कविता सभी तेरे चरणों पर अर्पित करता हूँ। मेरे लेखों में अन्य कोई विषय नहीं है। अपना तन, मन, यौवन सभी दे चुका हूँ। तेरा कार्य ईश्वरीय कार्य है इसलिये तेरी सेवा में भगवान् की सेवा दिखाई दे रही है। प्रज्वलित अग्नि में अपनी भावज, पुत्र, कान्ता और अग्रज को भी भेंट कर चुका हूँ और मैं स्वयं अपने शरीर को देने में उत्सुक हूँ। यही क्या! यदि हम सात भाई भी होते तो उनका बलिदान तेरे चरणों में होता। इस भारत भूमि की 30 कोटि सन्तानें हैं। जो मातृभूमि की सेवा में लगे हैं, वे धन्य हैं। हमारा कुल भी उन्हीं में से एक है। निर्वंश होकर भी हमारा कुल सार्थक हो गया है।

—वीर सावरकर

मरण का त्योहार जीवन की जवानी

जल्लाद की फांसी का रस्सा, हत्यारे का कुठार, तोपची का तोप का गोला अथवा अत्याचारी की खूनी संगीनें—सब मिलकर भी एक बलिदानी-वीर की, मातृभूमि के अनन्त प्रेम से आप्लावित, अजर-अमर अविनाशी आत्मा का दमन करने में समर्थ नहीं हो सकती। विकराल काल की दारुण दाढ़ों में पड़ा हुआ भी वह हँसकर निगोड़ी मौत का उपहास करता है। मृत्यु की काली छाया में भी वह पूर्ण विकसित शतदल के समान मुस्कराता रहता है। उसको डराने के वृथा प्रयत्न करके अन्त में थक कर मृत्यु ही म्लानमुख होकर चली जाती है। मौत और बलिदानी-वीर में दो-दो हाथ हो जाने पर मौत ही मर जाती है तथा बलिदानी-वीर शाश्वत काल तक अपनी स्मृति मात्र से ही युग-युग तक समस्त जाति को अनुप्राणित करता रहता है। और जिसके नाम-स्मरण मात्र से ही मुर्दा दिलों में भी जोश का एक समुद्र ठाठें मारने लगता है क्या वे स्वयं मुर्दा हैं? केवल प्राणवान ही प्राणियों को अनुप्राणित कर सकता है। केवल जागृत ही सुप्तों में जागृति फूंक सकता है। केवल जिन्दा ही मुर्दों में जान फूंक सकता है। इसलिए एक बलिदानी-वीर सांसों का वृथा भार ढोने वाले हम सब नाम मात्र के जीवित लोगों से बहुत अधिक जीवित तथा जागृत होता है। इससे बढ़कर भी वह युग-युग तक कोटि-कोटि मानवों को अमर प्रेरणा प्रदान करने का सामर्थ्य रखने के कारण केवल जीवित ही नहीं, शाश्वत जीवन वाला चिरन्तन-जीवी महामानव बन कर, इतिहास के यशोमन्दिर में अमर वैभव तथा अमिट गौरव का पूज्य पूजा-स्थान लाभ कर लेता है।

'जिसने निर्भयतापूर्वक अपने प्राणों का दान कर दिया, उसका क्षय नहीं हो सकता।' कवीन्द्र रवीन्द्र की यह हृदयस्पर्शी श्रद्धांजलि जिस महान् विभूति के चरणों पर चढ़ी, उसी शहीदेआजम सरदार भगतसिंह का ऐतिहासिक बलिदान दिवस 23 मार्च 1931 है। हे मेरे देशबन्धु! क्या तेरे शुष्क नेत्रों में एक भी गीला आँसू भारतमाता के उस लाल के चरणों पर चढ़ाने के लिए शेष बचा है?

भारत की राजधानी दिल्ली में सन् 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम की शताब्दी मनाने के लिए 12 मई को रामलीला मैदान में एक विशाल सभा हुई। बलिदानी-वीरों के मणिमुकुट स्वातंत्र्य वीर श्री सावरकर ने अध्यक्ष पद से बोलते हुए

बलिदानी-वीरों के चरणों में अपना भावनाशोक हृदय ही चढ़ा दिया। उसी मंच से शहीद शिरोमणि सरदार भगतसिंह को देशभक्ति के भाव पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले थे। उस के खून में ही क्रान्ति के महान् बीज थे जो उसके पिता किशनसिंह की देशभक्ति तथा दोनों चाचा, अजीतसिंह तथा स्वर्णसिंह की कुर्बानियों के रूप में अपना रंग दिखा चुके थे। सरदार भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह ने सन् 1857 के महान् स्वातंत्र्य समर में गौरवपूर्ण भाग लिया था। केवल देशभक्ति के कारण ही जब पिता किशनसिंह जेल में थे, चाचा अजीतसिंह लाला लाजपतराय के साथ माण्डले जेल में बन्दी थे, दूसरे चाचा स्वर्णसिंह नेपाल में थे, तब सन् 1907 में (13 आश्विन, 1964 के दिन) आजादी के इस अमर परवाने भगतसिंह का जन्म जालंधर के खटकरा ग्राम में हुआ। इस तेजस्वी बालक के जन्म के तुरंत पश्चात् ही चाचा स्वर्णसिंह घर पहुँच गए तथा पिता और चाचा अजीतसिंह की जेल से मुक्ति का समाचार पहुँचा। वास्तव में यह मुक्तिदूत तो भारत भर की मुक्ति के लिए ही आया था।

दादी इस नन्हे भाग्यवान बच्चे को प्यार-दुलार में 'भागों वाला' कहा करती, उसी तेजस्वी वीर को संसार ने भगतसिंह के नाम से पहचाना। पूज्य माता तथा दादी की धार्मिक आस्था ने उस भगत को भक्ति की ऐसी अद्भुत रंगत दी जिसकी दृढ़ता ने उसे हंसते-हंसते सूली पर चढ़ जाने का सामर्थ्य प्रदान किया। केवल 3 वर्ष का यह अनोखा भगत जब अपनी तुतली वाणी से गायत्री मंत्र का उच्चारण करता तो लोगों के विस्मय का ठिकाना न रहता। जिसने देव और देश को एक ही मान लिया हो उसकी देव-भक्ति देशभक्ति के माध्यम से प्रस्फुटित होती है। देश तथा धर्म के लिए असीम प्रेम लेकर आने वाला यह बालक ईश्वर से यही प्रार्थना करता—

मेरा रंग दे वसन्ती चोला,
मेरा रंग दे वसन्ती चोला।
इसी रंग में वीर शिवा ने
मां का बन्धन खोला॥ मेरा....।

इस प्रकार जिसने अपने तन, मन, प्राण को बलिदान के वसन्ती रंग में रंगने की ही एकमात्र कामना की थी वही बलिदानी-वीरों का चूड़ामणि बनकर संसार में पूजित हुआ। शिवाजी के समान दल बनाकर यह बालक युद्ध-क्रीड़ा करता। ढाल-तलवार लेकर वीरों के खेल खेलता। छोटी आयु में ही उसने बन्दूक चलाना सीख लिया तथा विदेशियों के पुतले बनाकर खेल-खेल में उनके कलेजे से गोली पार कर देता। एक खेत में किसान को बीज बोते देखकर इस सरल किन्तु, ध्येयनिष्ठ बालक ने अपने पिता से पूछा, 'ये किसान तलवार, बन्दूक की खेती क्यों नहीं करते, जिससे बहुत सी तलवारें-बन्दूकें पैदा हों?'

डी.ए.वी. स्कूल लाहौर में शिक्षा पाने के पश्चात् भगतसिंह डी.ए.वी. कालेज में प्रविष्ट हुए। असहयोग आन्दोलन में भगतसिंह ने वह विद्यालय छोड़ कर भाई परमानन्दजी द्वारा संचालित भारतीय विद्यालय में प्रवेश पाया।

जो स्वतंत्रता की नई-नवेली दुलहिन का वरण करने को पैदा हुआ था वह किसी अन्य युवती से विवाह कैसे कर सकता था! पिता ने विवाह की चर्चा चलाई और भगतसिंह घर से भाग कर दिल्ली पहुँच गया। वहाँ उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा संस्थापित 'वीर-अर्जुन' पत्र में काम करना प्रारम्भ किया। आज जिस 'वीर-अर्जुन' पत्र के स्तम्भों द्वारा हम उस आजादी के देवता के चरणों पर श्रद्धांजलि चढ़ा रहे हैं, उसी 'वीर-अर्जुन' पत्र के उस समय के दिल्ली से प्रकाशित अंक को उस अप्रतिम वीर भगतसिंह की महान् लेखनी का विद्युत्वाही स्पर्श प्राप्त हुआ होगा। इसके पश्चात् वे कानपुर में स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थीजी के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'प्रताप' में बलवन्तसिंह नाम से ओजस्वी लेख लिखते रहे। उन्हीं दिनों उनका कानपुर के श्री बटुकेश्वर दत्त से परिचय हुआ। उसी वर्ष गंगा-जमुना की बाढ़ से पीड़ित नर-नारियों की सहायता के लिए भी दत्त और भगतसिंह ने महान् कार्य किया।

अपनी वात्सल्यमयी माता की बीमारी का समाचार पाकर भगतसिंह तुरंत घर पहुँचे। पंजाब में अकालियों का 'गुरु का बाग' आन्दोलन जोरों पर था। उन्हीं दिनों लाहौर के एक बमकाण्ड में भगतसिंह को निरपराध ही पकड़ लिया गया। पिता के बहुत प्रयत्न करने पर निरपराध भगतसिंह 60 हजार रु. की जमानत पर छूटे। पिता के बहुत अनुरोध करने पर एक बार भगतसिंह ने लाहौर में एक डेयरी फार्म भी शुरू किया किन्तु भगतसिंह के जीवन का उद्देश्य कोई दूध बेचना तो नहीं था। कुछ दिनों में डेयरी फार्म बन्द हो गया।

दिल्ली के कोटला फिरोजशाह में कुछ क्रान्तिकारी नवयुवकों की गुप्त बैठक हुई। उन्होंने सोचा, 'हमारी नसों में जवानी का गर्म खून रहते यदि हमारी माता, भारतमाता पराधीन बनी रहे तो हमारी भरी जवानी पर सौ बार लानत है।' एक अन्य बैठक दिल्ली के 5000 वर्ष पुराने पाण्डवों के किले के खण्डहरों में हुई जहाँ एक बार कुरुक्षेत्र के युद्ध का बीजारोपण हुआ था। वहीं भारत में विदेशी शासन के विरुद्ध खुला संघर्ष प्रारम्भ करने का संकल्प हुआ। अज्ञातवासी वनवासी पाण्डवों के समान ही वे नवयुवक एक टूटे हुए मटके के पेंदे में बिना हलदी के दाल पकाते, रोटी के स्थान पर मोटे-मोटे टिक्कड़ खाकर पानी पी लेते। बिस्तर के स्थान पर धरती माता की खुली छाती थी जिस पर कभी-कभी अखबार बिछा लेते।

वह युग क्रान्तिकारियों का युग था। उत्तरप्रदेश के पुरुषसिंह चन्द्रशेखर आजाद, पंजाब के वीर सपूत सुखदेव, महाराष्ट्र के ब्राह्मण कुलभूषण श्री राजगुरु, बंगाल के वीरलाल श्री जितेन्द्रनाथ दास इत्यादि तो वीर भगतसिंह के साथी ही थे।

इसके सिवा वह युग खुदीराम बोस, बटुकेश्वर दत्त, रामप्रसाद बिस्मिल इत्यादि क्रान्तिकारियों का युग भी था।

सब से बढ़कर वह युग था 'लाल-बाल-पाल' की अमर त्रिपुटी का। पंजाब केशरी लाला लाजपतराय, महाराष्ट्र केशरी बाल गंगाधर तिलक तथा बंगाल केशरी विपिनचन्द्र पाल का गरमदल देश की धमनियों के उष्ण रक्त को स्वातंत्र्य के लिए तड़पा रहा था। फिर बंगभूमि के एक अन्य शहीद शिरोमणि पूज्य नेताजी सुभाष के अग्निवर्षी भाषणों से विदेशियों के हृदय जलने लगे थे। सरदार भगतसिंह ने अपने 'नौजवान भारत संघ' के सदस्यों को रामप्रसाद बिस्मिल की पावन स्मृति का 'काकोरी दिवस' मनाने का आदेश दिया। पीछे इस निराले वीर ने हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी का निर्माण किया तथा कई स्थानों पर गुप्त रूप से बम इत्यादि बनाने के कारखाने बनाए। वहाँ अपने मस्त नौजवान साथियों के संग वह लासानी वीर गाता फिरता—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजूए-कातिल में है॥

दुःखी व्यक्ति के दुःख में उसका अपमान भी किया जाये तो वह असह्य हो उठता है। ब्रिटिश सरकार की दमन नीति से भारतीयों का हृदय पहले ही दुःखी हुआ था। तिस पर उनकी समस्या सुलझाने के लिए पूर्ण रूप से ब्रिटिश अफसरों का एक आयोग साइमन कमीशन के नाम से भारत भेजा गया, वह जख्मों पर नमक छिड़कने के समान था। उसका बहिष्कार करने को पंचनद-पंचानन लाला लाजपतराय आगे बढ़े। उनके शरीर पर ब्रिटिश शासन के निर्मम लाठीप्रहार को देखकर वीर भगतसिंह का स्वाभिमान जाग उठा। उसका वीर हृदय रोष से हुंकार करने लगा। 17 नवम्बर 1928 के दिन लालाजी के बलिदान के पूरे एक मास पश्चात् 17 दिसम्बर को भगतसिंह ने अपने वीर दोस्तों (राजगुरु, सुखदेव, आजाद) के साथ लालाजी के हत्यारे कैप्टन साण्डर्स को गोली से उड़ा दिया, अगले दिन लाहौर में पोस्टर लगे थे, 'लालाजी की हत्या का बदला ले लिया गया।' ब्रिटिश सरकार की मिलिटरी और खुफिया पुलिस जब इन वीरों का पता लगाने में असमर्थ होकर थक गई तो अचानक एक दिन असेम्बली भवन में बम फटा, फिर गैलरी से पोस्टर फेंके गये। भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त ने नारा लगाया, 'इंकलाब जिन्दाबाद।' दोनों ने बहरी सरकार के कानों में अपनी आवाज पहुँचाने के लिये बम फेंका था। दोनों ने गिरफ्तारी के लिए अपने आप को पेश किया। इस भेड़िया सरकार से न्याय की क्या आशा थी! 23 मार्च 1931 को रात्रि के अन्धेरे में सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी दे दी गई और उनके शवों को सतलुज की प्रखर धारा में बहा दिया गया!!!

अपने छोटे भाई वीर कुलतारसिंह को अपना अन्तिम पत्र लिखते हुए उस वीर शिरोमणि भगतसिंह ने लिखा था—

उन्हें यह फिक्र है हरदम,
नया तर्जे ज़फा क्या है,
हमें यह शौक है देखें,
सितम की इन्तहा क्या है?
मेरी हवा में रहेगी,
ख्याल की बिजली
यह मुश्ते खाक है फानी
रहे या न रहे॥

उस महान् बलिदानी वीर की जेल की कोटड़ी की दीवार पर उसकी ज्वलंत देशभक्ति के परिचायक यही शब्द लिखे हुए मिले—'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं।' आज उस अजर-अमर हुतात्मा सरदार भगतसिंह के बलिदान पर्व पर उसके चरणों में हमारी शाश्वत श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

तुम्हें स्मरण रखना चाहिये कि तुम भगवान् के हाथ में यन्त्र हो....राष्ट्रवाद कभी नहीं मरेगा। यह ईश्वरीय शक्ति से ही जीवित रहता है तथा किसी भी भीषण शस्त्र प्रहार से कुचला नहीं जा सकता। इस जाति को उठाने का कार्य भगवान् का अपना कार्य (मिशन) है...जो कुछ हम कर रहे हैं उसका उद्देश्य राजनीति नहीं है, बल्कि भगवान् का एक कार्य करना है जिसके लिये हमारा आह्वान हुआ है।

—ऋषि अरविन्द

21 वर्ष पश्चात् राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला चुकाने वाले वीरव्रती शहीद ऊधमसिंह सुनामी

13 अप्रैल, 1919 का वैशाखी पर्व भारत के स्वाधीनता इतिहास का एक दारुण, दर्द भरा, रक्त-रंजित पृष्ठ बन चुका है। ब्रिटिश शासन के प्रतिनिधि पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सर माईकेल ओ डायर ने जिस निर्ममता से, बिना पूर्व सूचना दिए, जलियाँवाला बाग अमृतसर की सार्वजनिक सभा में 1600 गोलियाँ चलवा कर, हजारों भारतीय पुरुषों, बच्चों-स्त्रियों को कुछ क्षणों में ही मौत के घाट उतरवा दिया तथा परिणामस्वरूप लाशों से कुआँ भर गया, उस हृदय विदारक दृश्य के साक्षी सरदार ऊधमसिंह सुनामी ने अपने मन में उस नराधम, भीषण, नर-हत्यारे डायर को गोलियों से ही मौत के घाट उतारने का प्रण कर लिया तथा उस वीरव्रती ने 21 वर्ष तक इसी धुन में देश-विदेश भटककर अन्त में 24 मार्च 1940 को लंदन की एक विराट सभा में दनदनाती हुई गोलियों से उसका कलेजा चीर डाला। इस प्रकार भारत के एक रक्त-रंजित पृष्ठ का उत्तर इंग्लैण्ड के रक्त-रंजित प्रतिशोध पर्व से पूर्ण हुआ।

ऊधमसिंह एवं भगतसिंह—दो बलिदानी-वीरों की तुलना

सरदार ऊधमसिंह सुनामी का जन्म 13 पौष सम्वत् 1957 (सन् 1900 ई.) को पटियाला राज्य के सुनाम ग्राम में हुआ। एक दूसरे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शहीदे-आजम सरदार भगतसिंह जिनके क्रान्तिकारी कार्यों में सरदार ऊधमसिंह ने बाद में सहयोग भी दिया, वे 1907 में जन्म धारण करने के कारण सरदार ऊधमसिंह से 7 वर्ष छोटे थे। किन्तु जहाँ सरदार भगतसिंह को सन् 1931 में ही भारत में ही फांसी द्वारा बलिदान का गौरव मिला, वहाँ सरदार ऊधमसिंह को 1940 में लंदन में फांसी द्वारा बलिदान का यशलाभ हुआ। यह दोनों वीर राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला चुकाने हेतु ब्रिटिश हत्यारे अफसरों का वध करने के कारण फांसी की डोरी को चूमकर शहीद हुए। भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के हत्यारे सांडर्स को गोली का निशाना बनाया तथा सरदार ऊधमसिंह ने जलियाँवाला बाग के हत्यारे को उसके देश में जाकर लंदन की महती सभा में गोलियों से छलनी कर कुत्ते की मौत मारा।

लाला लाजपत राय का ज्वलंत आह्वान

जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के समय लाला लाजपतराय विदेश में थे। वे अमृतसर के हृदय विदारक संहार काण्ड को सुनकर तुरंत भारत लौटना चाहते थे। किन्तु विदेशी सरकार ने उन्हें अनुमति नहीं दी। उन्होंने वहीं से एक ज्वालापूरित वक्तव्य दिया, 'वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रांस के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैण्ड की नाक बचाई थी, अपने ही घर के द्वार पर, वैशाखी के दिन कुत्ते की तरह मौत के घाट उतारे गये।' लालाजी के इन शब्दों ने सरदार ऊधमसिंह को इस राष्ट्रीय अपमान का बदला चुकाने के लिए बेचैन कर दिया था।

बचपन में माता-पिता का देहान्त

वीर ऊधमसिंह के पिता सरदार टहलसिंह लुधियाना-धुरी-जाखल लाइन पर, रेलवे फाटक पर चौकीदार का काम करते थे। ऊधमसिंह का जन्म नाम शेरसिंह था और उसके भाई का नाम साधुसिंह था। शैशव में ही उनकी माता का स्वर्गवास हो जाने पर सरदार टहलसिंह दोनों बच्चों को लेकर अमृतसर चले गये किन्तु कुछ समय बाद पिता भी स्वर्गवासी हो गये।

पूर्ण अनाथ बालक

माता-पिता दोनों के आश्रय से वंचित होकर ऊधमसिंह तथा भाई साधुसिंह दोनों को अमृतसर के पुतलीघर क्षेत्र के केन्द्रीय अनाथालय में भरती होना पड़ा किन्तु वहाँ ऊधमसिंह के बड़े भाई साधुसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। इस तरह ऊधमसिंह बचपन में ही माता-पिता-बन्धु विहीन पूर्ण अनाथ बन गया। किन्तु इस अनाथ बालक ने अपनी तपस्या एवं कर्मठता द्वारा इतिहास के यशोमन्दिर में अपने लिए एक अमर स्थान प्राप्त कर लिया।

कला साधना

ऊधमसिंह ने अनाथालय में पलकर मैट्रिक की परीक्षा पास की तथा धीरे-धीरे कला का अभ्यास करते-करते वह एक पेंटर बन गया। अमृतसर के जलियाँवाला बाग के पास ही उसने अपनी दूकान खोली जिसका नाम भारत आर्ट स्टूडियो रखा। कौन जानता था कि भारत आर्ट स्टूडियो का कलाकार किसी दिन तूलिका द्वारा चित्र बनाने के स्थान पर आग्नेय अस्त्र द्वारा रक्त के रंग से भारत के स्वाधीनता संग्राम का एक अनोखा क्रान्तिकारी चित्र भी बना देगा।

राजनीति में रस

ऊधमसिंह अमृतसर के अनेक राजनीतिक दिग्गजों के साथ-साथ डाक्टर किचलू के प्रभाव में भी आया। इस प्रकार उस युवा कलाकार को देश की राजनीति में भी रस आने लगा।

हृदय विदारक सर्वसंहार को देखकर पापी डायर को दण्ड देने का व्रत

13 अप्रैल 1919 को वैशाखी पर्व के दिन अमृतसर में लाखों लोग एकत्रित थे। सरकार ने पंजाब में मार्शल लॉ घोषित कर दिया था। जलियाँवाला बाग के भीतर एक विराट जनसभा का आयोजन किया गया था। पंजाब का गवर्नर जनरल डायर 11 अप्रैल से ही अमृतसर पहुँचकर सेना का संचालन कर रहा था। सभा प्रारम्भ होते ही जनरल डायर ने बिना पूर्व सूचना के गोली चलाने का आदेश दे दिया। जनरल डायर ने स्वयं स्वीकार किया, '1600 गोली चलाई गई क्योंकि मेरे पास कारतूस खत्म हो गये थे। यदि और कारतूस होते तो मैंने और भी गोली चलाई होती।' 1000 निहत्थे भारतीय मौत के घाट उतार दिये गये। हजारों घायलों को रात्रि भर बिना पानी और डाक्टरी सहायता के तड़पते हुए छोड़ दिया गया। ऊधमसिंह ने अपनी आँखों से वह दारुण दृश्य देखा। मानव की लाशों से कुआँ भर गया था। कौए, चील, गिद्ध खून से लथपथ घायलों तथा मृतक लाशों को नोच-नोचकर खा रहे थे। इस भयंकर हत्याकाण्ड के विरोध में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'सर' की उपाधि त्याग दी। महामना मालवीय तथा मोतीलाल नेहरू ने इस हृदय-विदारक हत्याकाण्ड की भरपूर निन्दा की। युवा ऊधमसिंह ने 19 वर्ष की अवस्था में यह भयंकर सर्वसंहार स्वयं देखा तथा मन में इस संहार के लिए अपराधी जनरल डायर को उचित दण्ड देने का प्रण किया।

अमरीका में लाला हरदयाल एवं गदर पार्टी से संपर्क

सन् 1925 में सरदार ऊधमसिंह अमरीका गये। वहाँ एक औद्योगिक संस्थान में काम करते हुए वे लाला हरदयाल एवं गदर पार्टी के अन्य सदस्यों के प्रभाव में आये।

कारावास एवं सम्पत्ति जब्ती

सन् 1929 में जब वे भारत वापस आये तो उनके क्रान्तिकारी कार्यों के कारण उन्हें 4 वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। किन्तु वे कष्ट उठाकर भी अपने व्रत को न भूले। उनकी सारी सम्पत्ति एवं मकान आदि सरकार ने जब्त कर लिए।

राम मोहम्मद सिंह आजाद

सन् 1933 में वे (सरदार ऊधमसिंह) अपना वास्तविक नाम छिपाकर राम मोहम्मद सिंह आजाद के छद्म नाम पर पारपत्र बनवाकर इंग्लैण्ड चले गये। उनको अपने वास्तविक नाम पर पारपत्र मिल ही नहीं सकता था।

बर्लिन में

वे बर्लिन में महाविप्लवी रास बिहारी बोस से भी मिले और देश की स्वाधीनता के लिए क्रान्तिकारी मार्गों पर परामर्श करते रहे।

लन्दन में इंजीनियर

लन्दन में श्री ऊधमसिंह एक अभियांत्रिक संस्थान में कार्य करते रहे तथा अपना व्रत पूरा करने के लिए उचित अवसर की ताक में रहे। वहाँ वे इंजीनियर के रूप में प्रसिद्ध हो गये और उनकी अन्तिम गिरफ्तारी के समय भी उन्हें 'इंजीनियर' वर्णन किया गया।

14 मार्च 1940 राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला

21 वर्ष तक श्री ऊधमसिंह ने अपने व्रत की पूर्ति के लिए कठिन साधना की। 14 मार्च 1940 को लंदन में एक सभा में सर परसी साइक का अफगानिस्तान के इतिहास पर भाषण था। उस सभा में जनरल डायर भी उपस्थित था। श्री ऊधमसिंह चुपके से पत्रकारों की मेज की ओर बढ़ गये और उन्होंने 4 अग्निवर्षी गोलियाँ दाग दीं। गोलियों ने सर माइकेल डायर का भारतीयों के प्रति घृणा से भरा हुआ हृदय चीर डाला और वह तत्काल हृदय के रक्तस्राव से मृत होकर गिर पड़ा। लार्ड जेटलैण्ड (सेक्रेटरी आफ स्टेट) भी आहत हुआ। सर लुई डेन (पंजाब के भूतपूर्व उपराज्यपाल) और मुम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लेमिंगटन दोनों की भुजा टूटी और वे घायल हुए। वीर ऊधमसिंह अपने व्रत की पूर्ति के समाधान से वहीं शान्त खड़ा रहा और उसने भागने की कोई चेष्टा नहीं की।

व्रत पूर्ति का समाधान

जब वीर ऊधमसिंह को न्यायालय में मजिस्ट्रेट ने पूछा कि क्या उन्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है तब वीर ऊधमसिंह ने गौरव से कहा, 'मैंने राष्ट्रीय तिरस्कार का बदला लिया है। मैंने भारतमाता के एक पुत्र के नाते माँ के प्रति अपना एक छोटा-सा कर्तव्य पूरा किया है। मुझे अपनी सफाई में कुछ नहीं कहना है। वन्दे मातरम्।'

13 जून 1940 को शहीद

13 जून, 1940 को भारतमाता का यह वीर सपूत, जिसने, 21 वर्ष बाद भी राष्ट्रीय अपमान का प्रतिशोध लेने का व्रत पूरा किया, मात्र 40 वर्ष की अवस्था में ही हंसते-हंसते लंदन में ही फांसी के तख्ते पर शहीद हो गया।

उत्पीड़न की चीत्कार गोलियों की भाषा में

वीर ऊधमसिंह के इस उग्र साहसी कृत्य पर एक जर्मन समाचारपत्र ने लिखा, 'The cry of tormented people spoke with shots'

अर्थात्, भारत के सताए हुए लोगों का चीत्कार बन्दूक की गोलियों की भाषा में बोल उठा।

उस कर्मठ, साहसी, दृढ़वर्ती वीर शहीद को उसके बलिदान दिवस पर कोटि-कोटि भारतीयों के श्रद्धा प्रसून समर्पित हों। हम राष्ट्र के वैभव के लिए जीएं और राष्ट्र के गौरव की रक्षा हेतु बलिदान हों।

हमारा उद्देश्य, हमारा दावा यह है कि हम एक राष्ट्र के रूप में विनष्ट नहीं होंगे, बल्कि जीवित रहेंगे और इसके लिये लोगों को हर प्रकार के कष्ट सहने के लिये तैयार रहना चाहिये। कारण, कष्ट सहन के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती।

—ऋषि अरविन्द

× × ×

यह देश गिर अवश्य गया है, परन्तु निश्चय फिर उठेगा।
और ऐसा उठेगा कि दुनिया देखकर दंग रह जायेगी॥

—स्वामी विवेकानन्द

नेताजी सुभाष बोस के अमर प्रेरक स्वामी विवेकानन्द

'शक्ति ही जीवन है, दुर्बलता मृत्यु है। शक्ति वरदान है, शाश्वत जीवन है, अमर जीवन है। दुर्बलता निरन्तर भार है, क्लेश है, दुर्बलता तो साक्षात् मृत्यु है।.... मेरे बच्चो! मुझे चाहिए लोहे के पुट्ठों तथा इस्पात की धमनियों वाले नौजवान, जिनके भीतर का मन भी उसी तत्त्व का बना हुआ हो कि जिससे कड़कड़ाती बिजली बनी होती है।' इन ओजस्वी शब्दों में देश के तरुणों में संजीवनी फूंकने वाले शक्ति के दिव्य देवदूत, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द की वाणी को सार्थक करते हुए वीरप्रसू बंगभूमि ने 23 जनवरी 1897 को सुभाषचन्द्र बोस के रूप में एक ऐसा नरकेसरी पैदा किया जिसकी हुँकार मात्र से समूचे ब्रिटिश साम्राज्य का कलेजा कांप उठता था। सन् 1902 में जब स्वामी विवेकानन्द ने महासमाधि ले ली तब नन्हे सुभाष केवल 5 वर्ष के बालक थे। उन्होंने अपने नन्हे नेत्रों से उस महान् लोकनायक के दर्शन किए थे जिसके शब्द उनके जीवन का प्रेरणा मन्त्र बन गए थे। इस कथन में भी अत्युक्ति न होगी कि नेताजी सुभाष का समूचा जीवन स्वामी विवेकानन्द के शक्ति मंत्र पर एक जीता-जागता भाष्य था।

दोनों के जीवन में साम्य

स्वामी विवेकानन्द के जन्म से 34 वर्ष पश्चात् सुभाष बाबू का जन्म हुआ। दोनों बंगभूमि के वीर पुत्र थे। विवेकानन्द के पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट में एटार्नी एट-लॉ थे तथा सुभाष बाबू के पिता श्री जानकीनाथ बोस कटक में वकील थे। दोनों का बचपन बड़ा होनहार था। स्वामी विवेकानन्द के विषय में प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्यकार श्री रोमां रोलां लिखते हैं—उनके बचपन और युवावस्था के बीच का काल यूरोप के पुनरुज्जीवन काल के किसी कलाकार राजपुत्र के जीवन-प्रभात का स्मरण दिलाता है। सुभाष बाबू का तेजस्वी बाल व्यक्तित्व भी राजकुमारों के सौन्दर्य को मात करता था। दोनों विभूतियों की मातायें अतीव धर्मपरायण एवं प्रखर बुद्धि की स्वामिनी थीं। दोनों महापुरुष शिक्षाकाल में बड़े तेजस्वी प्रमाणित हुए। दोनों

के हृदय को रामायण-महाभारत की गाथाओं से पोषण मिला था। दोनों का व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर-सुडौल तथा हृदय को खींचने वाला था। दोनों के नेत्रों में प्रचण्ड अग्नि ज्वाला थी तथा वाणी में देश की प्रसुप्त आत्मा को जगाने की शक्ति थी। ब्रह्मतेज तथा क्षात्रतेज, दोनों ही मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिए विदेशों में गए। एक पूर्व में गए तथा दूसरे पश्चिम में। एक सांस्कृतिक मंच के महानतम लोकनायक बने, दूसरे राजनैतिक रंगमंच के अभूतपूर्व जननायक। एक ब्रह्मतेज के मूर्तिमान अवतार थे दूसरे क्षात्रतेज के। विस्मय की बात है कि नरेन्द्र बाबू (विवेकानन्द) क्षत्रिय (कायस्थ) होते हुए ब्रह्मतेज के देदीप्यमान दिवाकर बने तथा सुभाष बाबू भी वसु (कायस्थ) होते हुए भी क्षात्रतेज के ज्वलन्त आदर्श बन कर विश्व विश्रुत हुए। दोनों विभूतियाँ अपने महान् कार्य द्वारा विश्व को हिला गयीं। दोनों के पास साधनों का अत्यन्त अभाव था फिर भी दोनों ने एक अकेले होते हुए भी गौरव मण्डित विजय का लाभ किया। स्वामी विवेकानन्द जब अमरीका में थे तो उन के पास तन के एक भगवे वस्त्र के सिवा फूटी कौड़ी भी न थी। न भोजन के लिए पैसा था न सिर ढकने को स्थान। फिर भी भोगवाद के किले के भीतर घुसकर उन्होंने अपनी कर्तृत्व-शक्ति से विश्व विजय कर लिया। सुभाष बाबू जब भारत से बाहर गए थे तो उनके पास भी कोई साधन न था। पुलिस तथा फौज की नजर से बचकर एक भेष बदले हुए अपरिचित एकाकी व्यक्ति के समान वे दुनिया के द्वार पर खड़े थे। केवल अपनी कर्तृत्व शक्ति के बल पर उन्होंने एक अकेले व्यक्ति होते हुए संसार के बड़े-बड़े राज्यों से सम्पर्क स्थापित किया तथा बिना उचित साधनों के आज़ाद हिन्द फौज जैसी महान् सागर की लहरों के समान उमड़ती हुई सेना संगठित की जिसके थपेड़ों से भारत में जमे हुए ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ़ किले की जड़ें हिल गईं।

अन्तस्तल में संन्यासी का आदेश

युवक सुभाष के अन्तस्तल में एक संन्यासी का त्यागपूर्ण आदर्श सुप्त पड़ा था जो 15 वर्ष की अवस्था में जाग उठा। तब भारत के प्रत्येक तरुण के लिए विवेकानन्द का नाम एक जादू का प्रभाव रखता था। तरुण सुभाष के मन पर श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे योगाभ्यास की ओर झुके। घंटों वे मध्याह्न के सूर्य की ओर देखते रहते। उनकी आंखों के सामने विवेकानन्द जैसी तेजस्विता का आदर्श था। एक बार वे हिमालय में एकान्तवास के लिए निकल पड़े। एक बार तो सचमुच संन्यास लेने की इच्छा से वे रामकृष्ण आश्रम में पहुँचे। एक अभिनव विवेकानन्द बनने की उनकी हृदयस्थ लालसा बड़ी प्रबल हो उठी थी, आश्रम के स्वामीजी ने कहा कि तुम भगवा धारण किए बिना ही संन्यासी हो। तुम संसार में रहकर संन्यासी मन से भारतमाता की अर्चना करने के लिए पैदा हुए हो। इस प्रकार सुभाष बाबू संसार में होते हुए भी हृदय से संन्यासी बन गए।

राष्ट्रीय जागृति के जन्मदाता स्वामी विवेकानन्द

'ऐसे लाखों युवक-युवतियाँ चाहिए जो पवित्र भावों से ओत-प्रोत हो, सर्वशक्तिमान परमेश्वर के प्रति अटूट श्रद्धारूपी कवच धारण किए हुए, गरीबों, दलितों एवं ठुकराए हुओं के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए अदम्य साहस से परिपूर्ण हो, देश के कोने-कोने में जाकर मुक्ति का सन्देश, समाजोत्थान का सन्देश एवं महानता के सन्देश का प्रचार कर सके।' स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दों ने देश के लाखों ही नहीं करोड़ों युवक-युवतियों को राष्ट्रीय जागृति की प्रेरणा दी थी। स्वयं नेताजी सुभाषचन्द्र कहते हैं—'जहाँ तक बंगाल की देन का सम्बन्ध है विवेकानन्द को आधुनिक राष्ट्रीय जागृति का जन्मदाता माना जा सकता है। उनके समाधि लेने के पश्चात् उनका प्रभाव पहले से ही कहीं अधिक बढ़ गया है।'

दुर्दमनीय संकल्प शक्ति

'विजय प्राप्त करने के लिए तुम में अति महान् साहस चाहिए, प्रचण्ड संकल्प शक्ति चाहिए। साहसी आत्मा कहता है—मैं सागर को पी जाऊंगा। मेरे संकल्प के सम्मुख पर्वत चूर-चूर हो जायेंगे। इस प्रकार की शक्ति रखो, ऐसा संकल्प रखो, परिश्रम करो, तुम ध्येय तक पहुँच जाओगे।' विवेकानन्द की इस ज्वलन्त वाणी का ज्वलन्त उदाहरण बन गए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जो टूट भले ही जाएँ पर झुकना नहीं जानते थे। जर्मनी से प्राणों का संकट मोल लेकर वे समुद्रतल के नीचे ही नीचे हजारों मील एक गुप्त पनडुब्बी के भीतर यात्रा कर जापान पहुँचे। केवल अपनी संकल्प शक्ति के बल पर उन्होंने विश्व में ऐसा कार्य कर दिखाया जिसका उपमान नहीं मिलता। शान्तिदूत विवेकानन्द का आह्वान है—'क्या तुम में इतना प्रबल संकल्प है कि पहाड़ जैसी ऊँची बाधाओं को भी पार कर जाओ? यदि सारी दुनिया तुम्हारे विरुद्ध हाथ में तलवार ले कर खड़ी हो जाए तो भी क्या तुम वही करने का साहस करोगे जो तुम ठीक समझते हो?' इतिहास के रंगमंच से सुभाष बाबू की आत्मा उत्तर देती है—'अवश्य, लाख बार अवश्य, केवल ब्रिटिश साम्राज्य ही नहीं यदि संसार भी संगीनों से मार्ग को रोके तो मैं उन्हें चीरता हुआ ध्येय की ओर बढ़ जाऊंगा।'

बांधे जाते इन्सान कभी, तूफान न बांधे जाते हैं।
काया जरूर बांधी जाती, बांधे न इरादे जाते हैं॥

राष्ट्रीय एकता का आधार हिन्दुत्व

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के विचार हैं—'भारत में हिन्दूधर्म ने सबसे महत्त्वपूर्ण एक जोड़ने वाले सूत्र का कार्य किया है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम, तुम चाहे जहाँ यात्रा करो, तुम्हें सर्वत्र एक धर्म, एक ही संस्कृति और एक ही परम्परा के दर्शन होंगे। समस्त हिन्दू भारत को पुण्य भूमि मानते हैं।' स्वामी विवेकानन्द के विषय में

नेताजी स्वयं लिखते हैं, 'स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में धर्म राष्ट्रवाद की प्रेरक शक्ति था। उन्होंने नई पीढ़ी में भारत के अतीत के प्रति गर्व और भारत के भविष्य के प्रति श्रद्धा, आत्मविश्वास एवं आत्म सम्मान की भावना भरने का प्रयास किया।'

इस विषय में भारत गौरव स्वामी विवेकानन्द के विचार भी मननीय हैं, 'यूरोप में राजनैतिक विचारों से राष्ट्रीय विचारों का गठन होता है, भारतवर्ष में राष्ट्र उन्हीं लोगों का संघ बन सकता है जिनकी हृत्तन्त्री धर्म की एक ही झंकार पर बज उठती है। अतएव भावी भारत की उन्नति के लिए पहली शर्त होने के नाते धार्मिक एकता की नितान्त आवश्यकता है। हम देखते हैं कि भारत में धर्म की एकीकरण की शक्ति के आगे किस प्रकार जातिगत, भाषागत एवं समाजगत कठिनाइयाँ काफूर हो जाती हैं। हमारे जीवन का मूलस्रोत धर्म ही है।'

बलिदान-दर्शन

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—'महान् कार्य, महान् बलिदान द्वारा ही हो सकते हैं।' भारत कम से कम एक हजार मानवों का बलिदान चाहता है—मानवों का बलिदान, स्वपशुओं का नहीं। अपनी एक कविता में स्वामी विवेकानन्द धर्मयुद्ध का सजीव चित्र अंकित करते हैं।

'तुम मुझे रक्त दो मैं तुम्हें स्वाधीनता दूंगा।' इस इतिहास प्रसिद्ध उक्ति के उद्घोषक नेताजी सुभाष का आह्वान है—'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्धि चाहते हो। यदि हाँ, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा। यदि तुम उषा की सुनहली मुस्कान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे। यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद-शीतल छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।'

मातृभूमि का अन्तिम प्रेम

'भारतीय समाज मेरा शैशव का झूला, यौवन का नन्दनवन तथा मेरी वृद्धावस्था का पावन स्वर्ग है।' इन शब्दों में भारत के गौरव स्वामी विवेकानन्द का भारत प्रेम छलक रहा है। 4 जनवरी 1944 के दिन अपनी सेनाओं के साथ कदम-दर-कदम बढ़ाते हुए नेताजी सुभाष ने अपने साथियों को कहा—'क्षितिज के उस पार बलखाती हुई नदी के दूसरी ओर लहराते हुए जंगलों के पार उन धूमिल पहाड़ियों की ओट में हमारी जन्मभूमि है। हमारी नस-नस में उसी मातृभूमि का प्यार गुंथा हुआ है। हमें एक बार अपनी मातृभूमि में वापस जाना है। अतएव न रुकेंगे। खून ने खून को पुकारा है। हमारे शस्त्र अब म्यान में न रहेंगे। आगे बढ़ो! शत्रु की पंक्ति को चीरकर हमें अपने देश पहुँचना है। आजादी या मौत हमें याद रखनी है।' अपनी मातृभूमि से बिछुड़े माँ के उस दुलारे के यह अन्तिम उद्गार थे।

सुभाष बाबू का बलिदान दर्शन

'जब आप अपने देश को वापस जावें तो मेरे देशवासी भाइयों को बताना कि मैं आखिरी दम तक देश की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ, वे जंगे-आजादी को जारी रखें। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा, उसको कोई गुलाम नहीं रख सकता।' 18 अगस्त 1945 के क्रूर एवं रहस्य गर्भित दिवस पर जापान के तेटोको नामक स्थान पर जलते हुए हवाई जहाज में से निकलकर भागते हुए, फौजी वर्दी तथा जलते हुए बालों वाले जिस पुरुषसिंह ने अपने अन्य देशवासियों के हाथ प्यारे स्वदेश को यह सन्देश भेजा उन वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का तत्पश्चात् का जीवन अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिणी आँखों के लिए भी एक रहस्यपूर्ण प्रश्नचिह्न बना हुआ है!!

श्री गोपालदास व्यास के शब्दों में—

है समय नदी की बाढ़,
कि जिसमें सब बह जाया करते हैं।
है समय बड़ा तूफान
प्रलय पर्वत ढह जाया करते हैं॥
अक्सर दुनिया के लोग,
समय में चक्कर खाया करते हैं।
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं
इतिहास बनाया करते हैं॥
यह उसी वीर इतिहास पुरुष की,
अनुपम अमर कहानी है।
जो रक्त कणों से लिखी गई
जिसकी जयहिन्द निशानी है॥

सचमुच विश्व के वक्षस्थल पर मानव के लाल बलिदानी रुधिर से अंकित की हुई यह इतिहास दुर्लभ गाथा बड़ी ही रोमांचकारी है। इस गाथा से वीर अभिमन्यु का शौर्य, श्रीकृष्ण का यज्ञमय जीवन, चन्द्रगुप्त का रणकौशल, चाणक्य

की नीति, शिवाजी का लोकविश्रुत साहस तथा दधीचि का महान् बलिदान—सभी कुछ छिपा हुआ है।

इस महान् बलिदानी वीर सुभाष का जन्म आज से 113 वर्ष पूर्व 23 जनवरी 1897 को कटक के स्थान पर प्रसिद्ध वकील श्री जानकीनाथ बोस के शुभ गृह में हुआ। अत्यन्त धर्मपरायण माता के संस्कारों से भी बालक के जीवन की दिशा निश्चित होने में बड़ी सहायता मिली। इस तेजस्वी बालक के नेत्रों में बड़ा तेज था तथा मुखमण्डल से ओज टपकता था।

5 वर्ष की अवस्था में वह तेजस्वी बालक मिशनरी स्कूल में भरती हुआ तथा सदा कक्षा में प्रथम स्थान पाने लगा। रेवनशा कालिजिएट स्कूल में वे बांग्ला भाषा में सदा प्रथम आते। स्कूल के मुख्याध्यापक बाबू बेनीमाधव दास के सात्त्विक एवं राष्ट्र प्रेमी जीवन का उस बालक के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

युवक सुभाष के अन्तस्तल में एक संन्यासी का त्यागपूर्ण आदर्श सुप्त पड़ा था जो 15 वर्ष की अवस्था में एकाएक जाग उठा। भगवान् रामकृष्ण परमहंस के पट्ट शिष्य, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द अमरीका में विजय वैजयन्ती फहरा चुके थे। चाहे सुभाष बाबू की केवल 3-4 वर्ष की अवस्था में ही स्वामी विवेकानन्द अपना नश्वर चोला छोड़ चुके थे फिर भी वह उनके सन्देश का युग था। सुभाष के तरुण मन पर रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा, वे योगाभ्यास की ओर झुके, घण्टों ही वे मध्याह्न के सूर्य की ओर देखते रहते। वे एक बार हिमालय में एकान्तवास के लिए निकल पड़े एवं संन्यास लेने की इच्छा से रामकृष्ण आश्रम में पहुँचे। वहाँ के स्वामीजी ने कहा कि तुम भगवा धारण किये बिना ही संन्यासी हो, तुम संसार में रहकर भारतमाता की अर्चना करने के लिए पैदा हुए हो।

यज्ञमय जीवन

सुभाष बाबू का जीवन यज्ञमय हो गया। यज्ञ करते हुए हम 62 बार दुहराते हैं—

'इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम्।'

अर्थात्, यह जनम-मरण के साक्षी जातवेदस, अग्नि देवता के लिए अर्पित है, वह मेरा नहीं है। इसी यज्ञ-भावना को जीवन में साकार करते हुए सुभाष बाबू ने निरभिमान भाव से सर्वस्व राष्ट्रदेवता के लिए अर्पित कर दिया था।

'इदं राष्ट्रीय, राष्ट्रदेवाय, इदं न मम्।'

अर्थात्, यह सबकुछ राष्ट्रदेवता के लिए समर्पित है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

इसी भाव से जब जनों के हृदय में छिपे हुए नारायण की सेवा के लिए वे ग्राम-ग्राम घूमे तथा उन्होंने महान् समाजसेवा की, निष्काम सेवा का यज्ञमय जीवन ही सुभाष बाबू थे।

दुर्दमनीय आदर्शवाद

सुभाष बाबू एक ऐसे आदर्शवादी थे जो कभी समझौता करना नहीं जानते थे। आदर्श विरोधी किसी तत्त्व के साथ समझौता करना उनके लिए असम्भव ही था। वे टूट भले ही जावें पर न वे आदर्श को झुकने देते, न स्वयं झुकते। कालेज में एक अंग्रेज प्रोफेसर ने जब बार-बार समझाने के उपरान्त भी भारतीयों की निन्दा की तो सुभाष बाबू यह सहन न कर सके तथा उस अंग्रेज प्रोफेसर को उचित दण्ड दिया। चाहे, इस कारण उन्हें कालेज से बाहर निकलना पड़ा।

अपने राजनैतिक जीवन में भी वे कहा करते—यदि कोई मेरे संग चले तो उसके साथ, यदि कोई न चले तो अकेला और यदि कोई विरोध करे तो इस के बावजूद भी मैं निरन्तर बढ़ता जाऊंगा।

उस युग की राष्ट्रीयता में कुछ लोग अंग्रेजों से अनेक प्रकार के समझौते करने के पक्ष में थे। सुभाष बाबू पाप या अत्याचार के साथ कोई समझौता नहीं कर सकते थे।

सर्वस्व अर्पण

सुभाष सर्वस्व दान को ही सच्चा कार्य समझते थे। बलिदान पूरा होना चाहिए। सन् 1920 में उन्होंने आई.सी.एस. में सारे ब्रिटिश जगत् में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया था। किन्तु राष्ट्र के लिए उन्होंने उसे भी ठोकर मार दी। वे कहा करते—'तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' स्वतंत्रता का मूल्य प्राण है। उनकी उक्ति है—

'ऐसे कार्य करो कि जाति उठे, स्वयं दुःख उठाओ कि जाति सुखी हो।'

कण्टकाकीर्ण मार्ग

नेताजी का सन्देश है—'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्धि चाहते हो? यदि हां, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा, यदि तुम उषा की सुनहली मुस्कान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे; यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद शीतल छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।'

मातृभूमि का लाडला माता के लिए व्याकुल

कदम कदम बढ़ाए जा,
खुशी के गीत गाए जा
जिन्दगी है कौम की,
तू कौम पर लुटाए जा॥

4 जनवरी 1944 के दिन ह्रदय को तरंगित करने वाले इन स्फूर्तिदायी गीतों को गाते हुए लक्ष-लक्ष वीर सैनिकों को सम्बोधन कर वह मातृभूमि का लाडला अपनी जन्मदात्री भारतमाता के द्वारे पर खड़ा हुआ कह रहा था—'क्षितिज के उस पार—इस बल खाती हुई नदी के दूसरी ओर, लहराते हुए जंगलों के पार उन धूमिल पहाड़ियों की ओट में, हमारी जन्मभूमि है। हमारी नस-नस में उसी जन्मभूमि का प्यार गुंथा हुआ है। हमें एक बार अपनी मातृभूमि में वापस जाना है अब हम न रुकेंगे। खून ने खून को पुकारा है हमारे शस्त्र अब म्यान में न रहेंगे—आगे बढ़ो! शत्रुओं की पंक्ति को चीर कर आपको अपने देश में पहुँचना है। आजादी या मौत हमें याद रखना है।' कोहिमा और मणिपुर की पहाड़ियों में नेताजी के ये शब्द आज तक गूंज रहे हैं तथा सूने क्षितिज से बार-बार टकरा कर अपने उस अलौकिक वक्ता को खोज रहे हैं जिनके मुख से निःसृत हुए।

आज उसी महान् नेता को हम देशवासी उस खोए हुए नेता की स्मृति में ह्रदय की हरी-भरी क्यारियों के सारे के सारे भाव पुष्प शून्य में ही चढ़ाते हुए कामना करते हैं कि हमारे पूज्य नेताजी जहाँ भी हों उन्हें हमारी भावमुखर श्रद्धा सादर पहुँचे।

हिन्दुओं में जीने की इच्छा दृढ़ नहीं है–

हिन्दू लोग प्रायः जीवन की ओर उपेक्षा का भाव रखते हैं। वे लोग असंदिग्ध रूप से इहलोक की अपेक्षा परलोक में अधिक विश्वास करते हैं। उनमें जीवन की इच्छा का अभाव है और इसी कारण उसमें साहस की भावना भी नहीं है। फ्रांस की क्रान्ति के रूप में डाल्टन का नारा था, 'साहस करो' अब भी साहस करो, सदा ही साहस करो।

यदि हिन्दू भारत में जीवित रहना चाहता है तो इसे यह शूरता और आक्रामकता का संदेश ग्रहण करना पड़ेगा। वीरतापूर्ण जीवन का यह तो पुरातन वैदिक संदेश ही नये आवरण में है। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' केवल वीर और साहसी ही पृथ्वी का उपभोग करते हैं। आक्रमणशीलता जीवन है, इसका अभाव मृत्यु है।

हिन्दुओं का दृष्टिकोण प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में 'जाने दो भाई' वृत्ति का है, मानो इस जीवन का उनके लिये कोई अर्थ नहीं है।

—सुमित्रानन्दन पंत

दक्षिण-पूर्व एशिया में नेताजी की स्मृति

'जब आप अपने देश को वापस जावें तो मेरे देशवासी भाइयों को बताना कि मैं आखिरी दम तक देश की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ, वे जंगे-आजादी को जारी रखें। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा, उसको कोई गुलाम नहीं रख सकता।' 18 अगस्त 1944 के क्रूर एवं रहस्य गर्भित दिवस पर जापान के तेटोको नामक स्थान पर जलते हुए हवाई जहाज में से निकलकर भागते हुए फौजी वर्दी तथा जलते हुए बालों वाले जिस पुरुष-सिंह ने अपने अन्य देशवासियों के हाथ प्यारे स्वदेश को यह सन्देश भेजा, उन वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का तत्पश्चात् का जीवन अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिणी आँखों के लिए भी एक रहस्यपूर्ण प्रश्नचिह्न बना हुआ है!!

दक्षिण-पूर्व एशिया की इस बार की यात्रा में मुझे नेताजी के विषय में कुछ रोमांचक तथ्य प्राप्त हुए। सन् 1941 में अपने कलकत्ता निवास से अकस्मात् लुप्त होकर वे अफगानिस्तान के मार्ग से रूस होते हुए जर्मनी पहुँच गये और एक दिन जर्मन रेडियो से उन्होंने विस्मयकारी घोषणा की—'मैं सुभाषचन्द्र बोस, जिसे अंग्रेजों ने मृत बताया है, जीवित हूँ और बर्लिन में हूँ।' वहाँ उन्होंने अंग्रेजों के कट्टर शत्रु हिटलर से भेंट की, किन्तु हिटलर के हस्तक न बन कर उन्होंने भारतीय युद्धबंदियों तथा भारतीय छात्रों को संगठित कर आजाद हिन्द सेना का निर्माण किया। जर्मन नागरिकों ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया और स्वयं हिटलर ने उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। द्वितीय महायुद्ध में युद्ध का रंगमंच जर्मनी से बदल कर जब दक्षिण-पूर्व एशिया में आ गया तब नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बड़े रोमांचक एवं विस्मयकारी ढंग से उस भीषण युद्धकाल में जब आकाश में विमानों को ध्वस्त करने हेतु बमों के विस्फोट हो रहे थे, समुद्रों में तारपीडों द्वारा जलयानों को उड़ाया जा रहा था, धरती पर तोपों एवं टैंकों की गर्जना हो रही थी, उस समय एक जर्मन नवयुवक पनडुब्बी चालक फर्डिनेंड उंटशर उन्हें जर्मनी में समुद्र के नीचे डुबकी लगाकर, नीचे ही नीचे समुद्र मार्ग से सिंगापुर ले आया। जर्मनी में उस साहसी पनडुब्बी चालक की माता श्रीमती उंटशर से जब भेंट हुई तो वह बड़े

गौरव से अपने सुपुत्र की साहसिक पनडुब्बी यात्रा का रोमांचकारी वर्णन करती थी, जिसमें उसके पुत्र ने नेताजी का फोटो चित्र भी उतार लिया था।

मलाया का पतन

15 जनवरी 1942 को मलाया में अंग्रेजों ने जापान के सम्मुख आत्मसमर्पण कर 95 हजार भारतीय सैनिक उनके हवाले कर दिये थे। जनरल मोहनसिंह ने उन्हीं दस्तों को लेकर आई.एन.ए. की नींव डाली थी। अगस्त 1942 में भारत में भी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' गरम हो गया था।

जापान में घोषणा

सन् 1943 के प्रारम्भ में जापानी अधिकारी चाहते थे कि आइ.एन.ए. को ओकीनावा (जापान) के मोर्चे पर अमरीकी फौजों से लड़ने हेतु भेजा जावे। जनरल मोहनसिंह का मत था कि हम केवल भारत की स्वाधीनता हेतु अंग्रेजों के विरुद्ध ही लड़ेंगे अन्य किसी के विरुद्ध नहीं। उन्हीं दिनों रासबिहारी बोस सिंगापुर पधारे। उन्होंने घोषणा की कि शीघ्र ही वे जनता के सम्मुख एक वीर शिरोमणि इतिहास निर्माता को प्रस्तुत करने वाले हैं। 15 दिन बाद टोकियो रेडियो से शाम 7 बजे घोषणा हुई कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस टोकियो में हैं और शीघ्र ही सिंगापुर पधारने वाले हैं।

सिंगापुर में सिंहगर्जना

सिंगापुर में मैंने म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन का भवन देखा। जहाँ की सीढ़ियों पर खड़े होकर नेताजी ने अपना ऐतिहासिक भाषण किया था, जिसे सुनने के लिए लाखों नर-नारी, अपार जनसमूह समुद्र के रूप में उमड़ पड़ा था।

2 जून, 1943 की उस विराट सभा में ठीक 3.30 बजे मोटर केड और उसके बाद की गाड़ी में जापानी प्रधानमंत्री तोजो एवं नेताजी आये। नेताजी सफेद सूट पहने तथा गांधी टोपी लगाये हुए थे। तोजो ऊँचाई में नेताजी की कमर तक ही आते थे। तोजो के बाद जब नेताजी भाषण कर रहे थे तेज आंधी व पानी बरसने लगा। लोगों ने नेताजी पर छाता लगाना चाहा, किन्तु नेताजी ने छाता हटाते हुए कहा, 'वर्षा में हम भीगकर गल नहीं जायेंगे।' मूसलाधार वर्षा में उनका डेढ़ घंटे तक हिन्दी में ओजस्वी व्याख्यान हुआ।

'भारत को आजाद कराने, एक संगठित राष्ट्र को जन्म देने एवं उसे सुचारु रूप से चलाने के लिये हमें वर्तमान में कम से कम दो करोड़ डालर की आवश्यकता है जो मुझे 24 घंटे के अन्दर इकट्ठा करना है। इस पर कुछ व्यवसायियों ने घोषणा की कि वे अपने व्यवसाय के लाभांश का 5 प्रतिशत आजाद हिन्द सेना के लिए देंगे। किसी ने कहा कि 10 प्रतिशत तथा किसी ने 11 प्रतिशत कहा। इस पर

नेताजी ने बड़ी गम्भीर ध्वनि में पूछा, 'क्या आजाद हिन्द सेना का जो वीर सैनिक देश की स्वाधीनता के लिए युद्ध के मोर्चे पर अपना रक्त बहायेगा, वह 5 प्रतिशत, दस प्रतिशत या 11 प्रतिशत रक्त ही बहायेगा या मातृभूमि के लिए अपना प्राण सर्वस्व न्योछावर कर देगा?' उन्होंने अपने ऐतिहासिक शब्द उच्चारण किये, 'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्ध चाहते हो? यदि हां, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा। यदि तुम उषा की सुनहली मुस्कान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे। यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।....तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।'

नेताजी की इस मार्मिक अपील का ऐसा प्रभाव हुआ कि वहीं पर डालरों की वर्षा प्रारम्भ हो गयी तथा प्रातः 10 बजे से पूर्व ही राशि दो करोड़ डालर की सीमा पार कर गई।

रत्न-भूषणों के उपहार—नेताजी के खजाने का रहस्य

नेताजी की अपील पर अनेक महिलाओं ने अपने स्वर्णाभूषण तथा धनाढ़्य पुरुषों ने मणि-रत्नों के ढेर लगा दिये। नेताजी के सन् 1945 में अकस्मात् लुप्त हो जाने के पश्चात् जापान सरकार ने स्वाधीन भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र द्वारा सूचित किया था कि नेताजी की अमानत स्वर्णालंकारों एवं मणिरत्नों से भरे हुए दो बड़े ट्रंक उनके पास सुरक्षित हैं, जो भारत में मंगवा लिए जाने चाहिये। पं. नेहरू ने अपना एक विशेष दूत भेजकर वे दोनों ट्रंक भारत की राजधानी में मंगवा लिये थे किन्तु बाद में वह अपार रत्न-भण्डार किस खाते या किसकी जेब में गया उसका आज तक समाधान नहीं हो सका है। सिंगापुर के प्रवास में मुझे अनेक स्त्री-पुरुष मिले जिन्होंने नेताजी को अपने तन के गहने तथा तिजोरी के रत्न भेंट किये थे। कुछ ऐसे युवक मिले, जिनके पिता या चाचा-ताऊ ने अपनी सम्पत्ति नेताजी के चरणों में चढ़ा दी थी।....वे सब मुझे नोंच-नोच कर पूछते थे कि उनकी रत्नाभूषण की भेंट किसके पेट में गई। जनता पार्टी के शासनकाल में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने यह स्वीकार किया कि पं. नेहरू ने नेताजी की दो रत्न पेटिकायें जापान से मंगवाई थीं, किन्तु उनके भावी प्रयोग-विनियोग का कुछ भी पता नहीं चलता है। दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रवासी भारतीयों की भारतनिष्ठा की रक्षा हेतु वर्तमान सरकार को नेताजी के उस विशाल रत्न-भण्डार का विनियोग विवरण घोषित करना चाहिये।

सिंगापुर संग्रहालय में नेताजी की स्मृतियाँ

सिंगापुर संग्रहालय में नेताजी एवं आजाद हिन्द फौज सम्बन्धी अनेक दुर्लभ

चित्र एवं अभिलेख हैं जिनका संग्रह एवं प्रकाशन भारतीय इतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा।

मलेशिया में नेताजी की स्मृतियाँ

सिंगापुर विजय करने के पश्चात् नेताजी मलेशिया में आये तथा वहाँ लगभग 95 हजार भारतीय युद्धबन्दी सैनिकों को उन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए आजाद हिन्द सेना की ओर आकर्षित किया। मलेशिया के कुआलालम्पुर संग्रहालय में भी उनसे सम्बन्धित बहुत सामग्री है जो भारतीय नागरिकों के इतिहास ज्ञान हेतु आवश्यक है।

मलेशिया के एक सुन्दर द्वीप पीनेंग को प्राची का मोती कहा जाता है। वहाँ के गीता आश्रम के अध्यक्ष सरदार दुर्गादेव सिंह निन्दरा से बहुत घनिष्ट परिचय एवं मास भर के सहवास का सुयोग मिला। वे भी नेताजी की सेना में कैप्टन रह चुके थे। उनके सुपुत्र को नेताजी ने अपनी बाल सेना में भरती कर लिया था तथा उसे अपने साथ जापान भी ले गये थे। बाद में नेताजी ने उस किशोर बालक को अपने भाई शरतचन्द्र बोस के नाम पत्र लिख कर दिया, 'मेरा कोई पुत्र नहीं है, इस बालक को मैं पुत्र के समान मानता हूँ। इसलिये आप इसे जितना सहयोग दे सकें, दें।' नेताजी के लुप्त होने के पश्चात् वह नवयुवक नेताजी के पत्र के साथ कलकत्ता में शरतचन्द्र बोस से मिला तथा उन्होंने अपना निजी व्यय करके उस युवक को इंजीनियरिंग की ऊँची शिक्षा दिलायी। आजकल वह युवक प्रौढ़ बनकर भटिण्डा (पंजाब) में सुपरिटेंडिंग इंजीनियर है।

जापानियों को दो-टूक उत्तर

जापान से सहयोग लेते हुए भी जापान के नियंत्रण से मुक्त रह कर भारत की स्वाधीनता-साधना करते रहने के लिए उन्होंने जापानी-संसद में निरन्तर 8 घंटे तक भाषण दिया, जिसे सुनकर मंत्रिमण्डल व संसदसदस्य विस्मित हो गये और उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। वे भारतीयों के पुरुषार्थ से ही भारत की स्वाधीनता का महायज्ञ चलाना चाहते थे। उन्होंने कहा, 'जापान की बदौलत भारत की आजादी प्राप्त करना गुलामी से भी बदतर है। यदि जापानी समझते हैं कि अंग्रेजों के बाद उनका महत्त्व भारत में हो जायेगा तो उनसे बढ़कर बेवकूफ और कोई नहीं।' भला हम एक गदहे को छोड़कर दूसरे को कैसे स्वीकार कर सकते हैं!

ब्रह्मदेश में नेताजी के जीवित संस्मरण

ब्रह्मदेश में मुझे पंजाब के एक प्रवासी श्री दीनानाथजी से भेंट का सुयोग मिला। वे लगभग 75 वर्ष के वृद्ध महापुरुष हैं। उन्होंने ब्रह्मदेश में नेताजी को इतना सहयोग किया कि नेताजी ने उन्हें अपना परम विश्वासी मानकर आजाद

हिन्द बैंक के 'बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज' का चेयरमैन बना दिया। जिस भवन में आजाद हिन्द बैंक चलता था वह अभी तक विद्यमान है तथा संग्रहालयों में नेताजी के अनेक दुर्लभ चित्रों के अतिरिक्त लाखों लोगों के हृदयों में नेताजी के अमर प्रेरणा के चित्र अभी तक सजीव हैं। 1 अगस्त 1943 को जब गांधी एवं नेहरू भ्रमवश नेताजी को गद्दार मानने लगे थे तब नेताजी ने देशवासियों के नाम अपील प्रसारित की—

'प्यारे देशवासियो! आज मैं तुम्हें स्वाधीन बर्मा से अभिवादन प्रेषित कर रहा हूँ....कारागारों में पड़े मेरे देश-बन्धुओं को बता दो कि उनकी मुक्ति का दिन दूर नहीं.... पूरा राष्ट्र एक प्राण होकर खड़ा हो जाय तथा दुष्ट अंग्रेजों को हमारी पुण्य-भूमि से ठोकर मारकर निकाल दो....भारत की स्वाधीनता का दर्शन करो, आजाद हिन्द जिन्दाबाद।'

श्री दीनानाथजी के पास सुभाष एवं आजाद हिन्द सम्बन्धी बड़ी मूल्यवान सामग्री लेखों, अभिलेखों और संस्मरणों के रूप में पड़ी है, जिसका इतिहास में सदुपयोग होना चाहिये।

कृतज्ञता के नाम पर आसक्ति न पले और अनासक्ति के नाम पर कृतघ्नता न पले।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

छोटानागपुर में नेताजी सुभाष की स्मृति

1938 में श्री सुभाषचन्द्र बोस हरिपुरा कांग्रेस में अध्यक्ष थे। महात्मा गांधी की इच्छा के विरुद्ध भी श्री सुभाषचन्द्र बोस 1939 में त्रिपुरी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये थे। गांधीजी ने उनके विरुद्ध डा. पट्टाभि सीतारामैया को खड़ा किया था। जब सुभाषचन्द्र जीत गये तो महात्माजी ने यह वक्तव्य दिया—'पट्टाभि की हार मेरी हार है।'

सुभाषचन्द्र बोस अध्यक्ष तो बन गए, पर वह कार्यसमिति नहीं बना सके यानी उन्होंने जो कार्यसमिति बनाई, उसके सदस्यों ने उसके साथ काम करने से इन्कार किया। इस बीच गांधीजी ने राजकोट में अनशन किया था, जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा था और साधारण कांग्रेसी यह चाहते थे कि झगड़ा न बढ़े। जब सभी पुराने नेताओं ने सुभाष के साथ काम करने से इन्कार कर दिया, तब सुभाष के लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं रहा कि वह अध्यक्षता से इस्तीफा दे दें।

1939 के सितम्बर में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। सुभाष ने बहुत पहले से ही कहा था कि यह महायुद्ध आ रहा है। हमें इसका फायदा उठाकर अंग्रेज सरकार का तख्ता उलटने की तैयारी करनी चाहिए। महायुद्ध छिड़ने पर भी कांग्रेस फौरन् कुछ नहीं कर सकी। हां, उसने अपने मंत्रिमण्डलों को इस्तीफा देने के लिए कह दिया और इसके बाद 1940 की मार्च में रामगढ़ कांग्रेस के अध्यक्ष थे मौलाना अब्दुल कलाम आजाद। सुभाष ने भी रामगढ़ में समझौता विरोधी सम्मेलन किया, जो बहुत सफल रहा।

रामगढ़ कांग्रेस के मंच से बार-बार घोषणा की गई कि कोई भी सुभाष बोस का भाषण सुनने न जाय। बाबू राजेन्द्र प्रसाद के नाम से एक आज्ञापत्र कांग्रेसियों के नाम निकाला गया कि 'कोई भी कांग्रेसी श्री सुभाषचन्द्र बोस का भाषण सुनने कहीं न जाय।' फिर भी कांग्रेस सम्मेलन की अपेक्षा दस गुणा जनसमूह सुभाषचन्द्र बोस का क्रान्तिकारी भाषण सुनने एकत्र हुआ था। वहीं पर उन्होंने 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की घोषणा की थी। दिल्ली के कांग्रेस समर्थक दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' के प्रमुख सम्पादकीय में 'देशद्रोही सुभाष' शीर्षक से बहुत गंदा अग्रलेख निकला।

उसी प्रधान सम्पादक ने 'सुभाष' को देशद्रोही कह कर अपनी 'देशभक्ति' प्रकट की। मैनेजिंग डाइरेक्टर थे श्री देवदास गांधी, पूरे देश में यही हाल था।

अपनी छिछालेदार पर श्री सुभाषचन्द्र बोस को कैसी मर्मान्तक पीड़ा पहुँची थी, यह उन्हीं के शब्दों में पढ़िये, 'उस समय बार-बार मेरे मन में आया कि आत्महत्या कर लूं, परन्तु देश को स्वतंत्र कराने की जो प्रबलतम आकांक्षा मन में थी, उसने ऐसा न करने दिया।'

छोटानागपुर का जन-जन अपने प्यारे नेता (सुभाष) को याद करता है। रामगढ़ के मुख्य चौराहे में नेताजी की मूर्ति, खूंटी में नेताजी की घोड़े पर सवार मूर्ति तथा अनेक ग्रामों एवं नगरों में नेताजी चौक एवं स्मारक बने हैं। रांची के प्रसिद्ध डा. बीरेन राय ने (जो नेताजी के साथ आजाद हिन्द सेना में भी रहे थे) नेताजी का पाठागार भी स्थापित किया है। छोटानागपुर के जनमानस में नेताजी की स्मृति अक्षुण्ण है।

जहां तक गांधीजी के उदात्त विचारों का प्रश्न है तो बहुत पहले ही जवाहरलाल नेहरू के समाजवाद व पश्चिम के अन्धानुकरण की दौड़ ने उनकी स्वराज्य की कल्पना को अप्रासंगिक बनाकर रख दिया था। महात्मा गांधी द्वारा पालित पोषित कांग्रेस संगठन में कहीं भी उनकी प्रासंगिकता दिखाई नहीं देती। उस राजनीतिक संगठन में पुनः गांधीजी के महान् आदर्श को प्रस्थापित करने वाली कोई शक्ति नजर नहीं आती। आज निःसन्देह उनका महामानव रूप बड़े-बड़े स्थानों पर टंगे चित्रों तक सीमित रह गया।

—अशोक सिंघल

× × ×

नीति के अविरुद्ध प्रीति और परमार्थ के अविरुद्ध स्वार्थ से सुखमय जीवन सम्भव है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

स्वराज्य संस्थापक शिवाजी एवं स्वातंत्र्य-साधक वीर सावरकर

वीर सावरकर के आदर्श छत्रपति शिवाजी महाराज थे, जिन्होंने पांच-पांच विधर्मी, विदेशी बादशाहतों—बीजापुर की आदिलशाही, गोलकुंडा की निजामशाही, दिल्ली की मुगल शहंशाही, एबीसीनिया का सिद्दी जौहर, गोआ का पुर्तगाली शासन—सब को परास्त कर स्वतंत्र हिन्दू साम्राज्य की ऐतिहासिक संस्थापना की थी।

वीर सावरकर के जीवन में छत्रपति शिवाजी की ज्योति कैसे चमत्कारी रूप में काम कर रही थी, यह इतिहास का एक अनूठा एवं प्रेरणादायी अध्याय है। वीर सावरकर के आदर्श पुरुष छत्रपति शिवाजी ही थे तथा शिवाजी का जैसा मार्मिक इतिहास सावरकरजी ने लिखा है वह भी अतुलनीय ही है।

जैसे जीजाबाई ने संस्कारित कर शिवाजी का निर्माण किया था, वैसे ही सावरकर के माता-पिता शैशवावस्था में ही शिशु सावरकर को रामायण-महाभारत, शिवाजी, राणा प्रताप आदि की प्रेरक वीर गाथाएँ सुनाकर उनका संस्कार करते थे। सावरकर के पिता (श्री दामोदर पन्त सावरकर) स्वयं अच्छे कवि थे तथा उन्होंने बालक विनायक सावरकर को मराठी के प्रख्यात सन्त-कवि तुकाराम, वापट, मोरोपन्त की कविताएँ सुनाकर उसकी काव्य प्रतिभा को भी अंकुरित कर दिया था।

सावरकरजी ने छात्र जीवन में ही अपनी मित्र मण्डली को लेकर रोहिडेश्वर के उसी शिव मन्दिर में जाकर अपनी कटार से अपनी भुजा का रक्त चढ़ाकर मातृभूमि की स्वाधीनता की प्रतिज्ञा की जहाँ बाल शिवाजी ने 250 वर्ष पूर्व अपनी बाल मित्र मंडली के साथ अपनी भुजा के रक्त से शिव का अभिषेक कर हिन्दवी स्वराज्य की संस्थापना के लिए प्रतिज्ञा की थी।

छत्रपति शिवाजी के राज्यारोहण के 225 वर्ष पश्चात् सन् 1901 में सावरकरजी ने मैट्रिक परीक्षा पास कर फार्ग्यूसन कॉलेज, पूना के रेजीडेंसी छात्रावास में छत्रपति शिवाजी की पूजा आरती का क्रम चालू किया, शुक्रवार के

दिन सावरकर के साथी छात्र शिवाजी महाराज का चित्र अपने छात्रावास में लगाते और उसकी आरती करते, 'आरती' सावरकर ने ही रची थी, जिसका अर्थ यह था—

'हे छत्रपति शिवाजी! आर्यों के देश पर विदेशियों का हमला हो गया है, सजग होकर आप शीघ्र आइए। भारतमाता आप को रुद्ध कण्ठ से पुकार रही है। क्या आपके हृदय को उसका स्वर बेधता नहीं? हे शिवाजी! आप की जय हो। आर्य जनता आप की शरण है। इसकी मुक्ति के लिए जल्द आइये।

कभी जिस भारत-भू के लिए माता दुर्गा ने शुंभ-निशुंभ आदि दानवों का नाश किया था और जिसकी सुरक्षा के लिए श्री रामचन्द्र ने रावण का संहार किया था, वही भारत-भू आज अंग्रेजों से पीड़ित है। हे शिवाजी! आप के बिना कौन उसकी रक्षा करेगा?

हम भारतवासी त्रस्त हैं और निर्धन हो गये हैं। गुलामी की बेड़ियों ने देश को मरणासन्न बना दिया है। अब आप के शरणागत हैं। इसलिए हे प्रभु। सज्जनों के रक्षार्थ तथा भगवद्‌गीता के सन्देश को सार्थक बनाने के लिए आप तुरंत आइये।

कहते हैं आर्यों की करुण पुकार सुनकर स्वर्ग में शिवाजी का गला भर आया और तब देश को स्वतन्त्र कराने के लिए श्रृंगेरी किले में जन्म धारण किया। जब देश का कार्य हो गया तब उन्होंने रायगढ़ दुर्ग में अन्तिम विदा ले ली। बोलो, उन शिवाजी की जय बोलो। जिन्होंने देश को स्वतन्त्र कराया।'

यह आरती गाकर सावरकर और उनके साथी देश सेवा का संकल्प दृढ़ करते रहते थे।

सावरकरजी ने प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग देखने की योजना बनाई। पहले उन्होंने सिंहगढ़ किला देखा। इस किले में छात्रों के बीच सावरकरजी ने बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। उन्होंने शिवाजी से सम्बन्धित अन्य दुर्गों को भी श्रद्धापूर्वक देखा।

लोकमान्य तिलक ने सावरकर की रक्त प्रतिज्ञा एवं विदेशी कपड़ों की होली से गद्‌गद होकर कहा कि 'सचमुच अभिनव शिवाजी का जन्म हो गया है।' लोकमान्य तिलक ने सावरकर को लन्दन में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को पत्र लिखकर उन्हें छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति दिलवायी थी।

तिलक महाराज ने स्वाधीनता महायज्ञ हेतु जनजागरण के लिए महाराष्ट्र में गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव का प्रचार किया था। सावरकर ने इन युवकों में प्रेरणा भरने हेतु बड़ा व्यापक अभियान चलाया। लोकमान्य तिलक ने शिवाजी की जन्म स्थली शिवनेरी दुर्ग को देखा तो उसकी उपेक्षित अवस्था को देख कर उनके नेत्रों में अश्रु छलक आये। उन्होंने ही देश भर में धन संग्रह करके शिवनेरी

दुर्ग पर जीजाबाई के दुलारे, इतिहास के अलौकिक पुरुष छत्रपति शिवाजी का उचित स्मारक बनवाया। सावरकरजी ने उस शिवनेरी दुर्ग को युवकों का प्रेरणादायी महातीर्थ बना दिया।

स्वाधीनता आन्दोलन में लोकमान्य तिलक को डोंगरी जेल की जिस ऐतिहासिक बैरक में दो बार बन्द रखा गया था, वीर सावरकर को भी सन् 1911 में पचास वर्ष का आजन्म कारावास का दण्ड देकर अन्दमान जेल भेजने से पूर्व उसी डोंगरी जेल में उसी बैरक में रखा गया था। दोनों शिवाजी भक्तों को जेल के भीतर एवं बाहर समान प्रेरणाएँ आन्दोलित करती रहीं। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने माण्डले जेल की काल कोठरी में स्वाध्याय हेतु निजी व्यय से सैकड़ों ग्रंथ मंगवाए थे। सावरकरजी ने भी अंदमान में अपने मित्रों, प्रशंसकों एवं सम्बन्धियों को पत्र लिख-लिख कर हजारों ग्रंथ स्वाध्याय के लिए एकत्र कर लिए थे।

जैसे तिलकजी ने प्रायः सभी ग्रन्थ कारागार में ही लिखे, सावरकरजी की भी सभी रचनाएँ कारागार की साहित्य साधना हैं। जैसे तिलक महाराज ने माण्डले जेल की काल कोठरी की दीवारों पर कोयले से लिखकर 'गीता रहस्य' जैसे महान् ग्रंथ की रचना की। सावरकरजी भी हथकड़ी पहने हाथों से अन्दमान जेल की काल कोठरी की दीवारों पर गोमान्तक महाकाव्य लिखते थे। 1920 में अंदमान जेल की घोर यातनाओं (30 सेर तेल पेरना, रस्सी बँटने, लोहे के पिंजरे में बन्द रहने, हथकड़ियों से दीवार पर टांगे जाने, हंटरों की मार, कुपोषण, मानसिक यंत्रणा आदि) से वीर सावरकर गंभीर रूप से रुग्ण हो गये। उन्हें मृत्यु की काली छाया सिर पर मंडराती प्रतीत होने लगी। उन्होंने मृत्यु को संबोधन कर कविता लिखी—'इस स्वाधीनता की रणयज्ञाग्नि में मैंने अपनी अस्थि-अस्थि, मांस की बोटी-बोटी, रक्त की प्रत्येक बूंद ईंधन के समान भेंट कर दी है।' उसी समय उन्हें तिलक महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। सावरकरजी के परामर्श में अंदमान जेल के सभी बंदियों ने दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए दिनभर उपवास किया। यदि तिलक महाराज शिवाजी के आदर्श प्रस्थापक थे तो सावरकरजी शिवाजी के सजीव आदर्श।

सावरकरजी ने छात्र जीवन में ही प्रेरक कवितायें, विशेष कर मराठी रणगीत पोवाड़े रचकर युवकों के हृदय में राष्ट्र भक्ति की भावनाएँ प्रज्वलित करनी प्रारंभ कर दी थीं। वे शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह आदि के पोवाड़े रचते व उन्हें अपने साथियों के बीच सुनाते तो किशोरों की बाहें फड़कने लगती थीं। एक पोवाड़े में वे एक स्थान पर शिवाजी, दिल्ली के मुगल सिंहासन को चकनाचूर करने वाले पानीपत के वीर पराक्रमी सदाशिवराव भाउ, सेनापति धनाजी एवं सन्ताजी आदि को एकत्रित दिखाते हैं किन्तु वीर बाजीप्रभु देश पाण्डे की

अनुपस्थिति पर दुःख प्रकट करते हैं। फिर स्वयं कहते हैं हाय वीर बाजी प्रभु! बीजापुर के मुसलमान बादशाह की नौकरी में हैं? वह विदेशी विधर्मी की, अपनी ही मातृ भूमि की दासता में सहायता कर रहे?

दूत बाजीप्रभु को सम्बोधित कर कहते हैं, 'जिसको अपने देश, अपने स्वराज्य से प्रेम नहीं उस व्यक्ति को धिक्कार है। आज तो देश द्रोह करने वाले चाण्डालों का बाजार लगा है। बाजी वीर श्रेष्ठ इस दासता में अपनी आयु क्यों व्यर्थ नष्ट करते हो? गो-ब्राह्मण प्रतिपालक स्वातंत्र्य संस्थापक भगवान् शंकर के अवतार शिव प्रभु तुम्हें बुला रहे हैं। स्वाधीनता संग्राम जो छिड़ा है उसके लिए तुम्हें बुला रहे हैं। वहाँ चलो, देशभक्ति का अमृत-पान करके प्रायश्चित्त करो और स्वातंत्र्य सेना का नेतृत्व करो।' ये शब्द बाजी प्रभु के हृदय में तीर के समान चुभते हैं। राष्ट्रभक्ति भावना जागृत हो उठती है और हृदय ग्लानि की भावना से मर्माहत हो उठता है। बाजी प्रभु शिव दूतों से कहते हैं—

'घर में घुसे इस विदेशी, विधर्मी, हिन्दू द्रोही चोर को मैंने राजा माना और शिवाजी जैसे महान् पराक्रमी वीर का विरोध किया। मेरी पावन मातृभूमि जिसने भ्रष्ट की। मैं उसका सेवक बना। शिव दूतो! महाराजा शिवाजी से कहना कि मेरे जैसे अधम राष्ट्रद्रोही को काट डालें, आकर मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दें।'

बाजी प्रभु का विचार आगे बढ़ता है—'मेरा देश मेरा राजा है। वह मेरा प्राण है। वह मेरा ईश्वर है। भगवान् है। मैं छत्रपति शिव प्रभु की शरण में आया हूँ। अग्नि के ऊपर जो राख जमी थी, वह उड़ गई और वह अग्नि पुनः प्रदीप्त हो वैश्वानर बनकर शत्रु दमन के लिए रणभूमि में आ डटा।'

अफजल खां के पुत्र फाजल खां तथा एबीसीनिया के हब्शी सिद्दी जौहर ने हजारों सैनिकों के साथ पन्हाला का किला घेर लिया। शिवाजी किले में थे तथा बाजी प्रभु देश पाण्डे मात्र 100 सैनिकों के साथ रक्षा कर रहे थे। स्वतंत्रता देवी के साक्षात हृदय रूप शिवाजी उस दुर्ग में फंस गये थे। फाजल खां पिता का बदला लेने के लिए आया था। बीजापुर से प्रस्थान करने से पूर्व इस दुष्ट फाजल खां ने बीजापुर की चारदीवारी के प्रवेशद्वार पर महान् विजयानगर साम्राज्य के अन्तिम सम्राट राम राजा का सिर लटका रखा था और उसे उतार कर वहाँ पर शिवाजी का सिर लटकाने की प्रतिज्ञा की थी और वह पन्हाला दुर्ग को घेरे खड़ा था।

वीर सावरकर की ओजस्विनी वाणी कहती है—'बेटा फाजल! जानते हो मुकाबला किससे है? तुम्हारे बाप को जिसने मिट्टी में मिला दिया उस महापुरुष से दो-दो हाथ करना है। शक्तिशाली पवन को मुट्ठी में पकड़ने का यह प्रयत्न है। आओ, जंगलों को भस्म करने वाले दावानल को पकड़ने के लिए हिरन के बच्चे बढ़, आगे बढ़!'

उसी पोवाड़े में वीर सावरकर आगे लिखते हैं कि बाजी प्रभु देश पाण्डे शिवाजी को बचाने हेतु उनसे आग्रह करते हैं—'छत्रपति माई-बाप! मराठा मृत्यु से डरता नहीं। आप रांगणा चले जाइए। वहाँ से संकेत रूप पांच तोपें दागिये। .....छत्रपति! आप वसुदेव हैं, मुसलमानों के कंस-कपट की ओर ध्यान देकर स्वतंत्रता की अमृतमयी मूर्ति लेकर रांगणा के गोकुल में चले जाइए, जहाँ वह सुरक्षित रूप से रहे।'

विश्व इतिहास में जो भयंकर और निर्णायक युद्ध हुए हैं उनमें पावन खिण्ड का यह युद्ध सभी दृष्टियों से अपूर्व था। सौ-डेढ़ सौ मराठा सैनिकों ने बहुत बड़ी मुस्लिम सेना को पूरी तरह हराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मर्म स्थान पर गोली लगने से बाजी प्रभु अर्ध मूर्च्छित होकर भी लड़ते रहे। वे बोले—'तोपों की आवाज सुनने से पहले बाजी मरेगा नहीं, मरेगा नहीं, यह बात यमराज से कह दो, बाजी तोप आवाज के पहले नहीं मरेगा।'

लड़ते-लड़ते बाजी प्रभु ने पाँच तोपों की गर्जना सुनी। तोप का प्रथम गर्जन शिवाजी का, दूसरा स्वधर्म है, तीसरा स्वदेश का, चौथा कर्तव्य का और पाँचवाँ है विजय ध्वनि का। बाजी का मृत शरीर स्वतः स्वतंत्रता भगवती ने उठाकर अपने रथ में रखा और उसे लेकर स्वर्ग की ओर बढ़ीं। गंधर्व अति आनंदित हो गये, देवताओं ने स्वागतार्थ दुंदुभि बजायी। सारा चराचर विश्व बाजी का यशोगान करने में तल्लीन हो गया।

क्रान्तिकारी चाफेकर बन्धुओं ने 1894 में हिन्दू धर्म संरक्षणी सभा की स्थापना की थी। सभा एवं सावरकरजी द्वारा स्थापित मित्र मेला के कार्यक्रम शिवाजी श्लोक तथा गणपति शिवाजी श्लोक का भाव इस प्रकार है—केवल शिवाजी की गाथा दोहराने मात्र से स्वतंत्रता मिलना संभव नहीं बल्कि हम लोगों को शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कस कर संहार कार्यों में लग जाना होगा। मित्रो! अब आपको स्वतंत्रता के लिए शस्त्र उठाने होंगे और अंग्रेज दुश्मनों के सिर काट कर स्वातंत्र्य लक्ष्मी का अभिषेक करना होगा।

'मित्रो! हम संकल्प करते हैं कि राष्ट्रीय रणांगण में हम अपना जीवन बलिदान कर देंगे और जो लोग हमारे धर्म व मातृ भूमि को नष्ट करने में लगे हैं तथा उस पर आघात कर रहे हैं उनके रक्त से धरती रंग देंगे। हम सब शत्रुओं को यमलोक पहुँचा कर ही मरेंगे।'

सावरकरजी ने अपने विश्वस्त साथियों को एकत्रित करके एक गुप्त बैठक में भारत की स्वाधीनता के लिए सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए 'अभिनव भारत' नामक एक संस्था की स्थापना की।

अभिनव भारत का प्रत्येक सदस्य निम्न प्रतिज्ञा लेता था—'छत्रपति शिवाजी के नाम पर, अपने पवित्र धर्म के नाम पर और अपने प्यारे देश के लिए पूर्व-पुरुषों की कसम खाते हुए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अन्तिम सांस तक संघर्ष करता रहूँगा। मैं न तो आलस्य करूंगा और न अपने उद्देश्य से हटूंगा। मैं अभिनव भारत के नियमों का पूर्ण पालन करूंगा और संस्था के कार्यक्रम बिल्कुल गुप्त रखूंगा।'

सावरकरजी ने पूना की एक सभा में भाषण देते हुए कहा, 'छत्रपति शिवाजी की सन्तानो! जिस प्रकार शिवाजी ने मुगल साम्राज्य का विध्वंस किया। सदाशिव राव भाऊ ने मुगल तख्त को चकनाचूर किया, उसी प्रकार तुम्हें अब भारत माँ को दासता की बेड़ियों में जकड़ने वाले अंग्रेजों के अत्याचारी साम्राज्य को चकनाचूर करके स्वाधीन हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करनी है। सशस्त्र क्रान्ति के बल पर इस विदेशी साम्राज्य का तख्ता पलटना है।'

1906 में सावरकरजी ने लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा चालू छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति प्राप्त की। उन्होंने फ्री इंडिया सोसाइटी की स्थापना करते हुए कहा—

'अंग्रेजी साम्राज्य को भारत से तभी समाप्त किया जा सकता है जब भारतीय युवक शिवाजी के समान हाथों में शस्त्र लेकर मरने-मारने को कटिबद्ध हो जायें। सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा ही भारत की स्वाधीनता सम्भव है। अतः हमें भारतीय युवकों को इसके लिए तैयार करना है। उसकी शस्त्रास्त्रों से सहायता करनी है।' सावरकरजी ने 2 मई 1908 को लन्दन में शिवाजी जयन्ती महोत्सव धूम-धाम से मनाया।

ढींगरा के बलिदान पर सावरकरजी ने कहा—'ढींगरा महास्वाभिमानी हिन्दू थे। उनके मतानुसार राष्ट्र शत्रु का वध भगवान् राम, कृष्ण, शिवा, प्रताप आदि हिन्दू स्वाभिमानियों की वीर परम्परा का एक अंग था, वह ईश्वरीय कृत्य था। भारतीय स्वातंत्र्य समर की ज्योति प्रज्वलित करने वाला एक निनाद था उनका ऐतिहासिक वक्तव्य।'

1 जुलाई 1910 को वीर सावरकर को इंग्लैण्ड से गोरिया जलयान द्वारा भारत लाया जा रहा था। वीर सावरकर के मस्तिष्क में छत्रपति शिवाजी द्वारा औरंगजेब के कारागार से चतुरता के साथ मुक्त होने की योजना घूम गई। उन्होंने विचार किया कि अंग्रेजी साम्राज्य की जेलों में यातनाएँ सहन करने की अपेक्षा मुक्त होकर मातृ-भूमि को स्वाधीन कराने में योग देना कहीं अच्छा है। फांसी पर चढ़ने की अपेक्षा अंग्रेज अधिकारियों से दो-दो हाथ करते हुए शहीद हो जाना कहीं अधिक उचित है। उन्होंने गोरों के चंगुल से मुक्त होने का निश्चय कर लिया।

8 जुलाई 1910 को मार्सेल बन्दरगाह के निकट जहाज पहुँचने ही वाला था कि सावरकर शौच के बहाने से जहाज के पाखाने में जा घुसे। बड़ी फुर्ती से वे उछलकर, पोर्टहॉल को पकड़ कर छेद से 'जय स्वातंत्र्य लक्ष्मी' का उद्घोष कर समुद्र में कूद पड़े।

वीर सावरकर ने स्वयं लिखा है—'अन्दमान में हम हिन्दू राजबन्दियों पर पापी, कुकर्मी व चुगलखोर तीन वार्डर जो रखे गये थे वे तीनों के तीनों पठानी, बलूची, मुसलमान थे। वे तीनों क्रूर मुसलमान वार्डर हिन्दुओं पर दबदबा जमाने की नीति रखते थे। समस्त सिन्धी मुसलमान, पठान मुसलमान, पंजाबी मुसलमान एक होकर हिन्दुओं को परेशान करते थे। एक दिन पठान वार्डर ने एक मद्रासी हिन्दू कैदी को गालियाँ देते हुए कह दिया, 'यह काफिर है साला....इसकी चोटी उखाड़ना चाहिए।' अण्डमान में कुछ मुसलमान कैदी हिन्दुओं को त्रस्त करके व बाद में सहानुभूति दिखाकर उन्हें 'इस्लाम धर्म' स्वीकार करने को बाध्य करते। पठानों ने जब एक-दो हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया तो सावरकरजी ने प्रत्युत्तर में शुद्धि का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

छत्रपति शिवाजी के समय में भी उनका विश्वासी सेनानायक नेताजी पालकर मुगलों द्वारा धर्म भ्रष्ट कर कुली खां बना दिया गया था। 9 वर्ष काबुल कांधार में मुगलों के अधीन युद्ध करता रहा। शिवाजी ने 19 जून 1677 को पूर्ण धार्मिक रीति से उसका शुद्धि संस्कार करवाकर उसे पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर लिया था।

वीर सावरकर ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने पर उनके अभिनंदन में कविता (अन्दमान जेल से ही) लिखी—'रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गौरव में भारत का गौरव अनुस्यूत है। भारत माता 'समरवाष्परथ' में आरूढ़ होकर राजधानी की ओर वापस लौट रही है। उसके स्वागतार्थ कवियों का समूह आगे बढ़ा। मैं भी कवि हूँ इस विश्वास से मैं भी उस कवि समूह में सम्मिलित होने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु माता की आज्ञा हुई कि क्रान्ति के वाष्पयंत्र के कक्ष में काम करने वालों की कमी है, वहाँ जा। इस आज्ञा के कारण मुझे कवि कक्ष में सम्मिलित होने का अवसर न मिला।' वीर सावरकर ने शिवाजी के यश में वीर रस के गीत गाये तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी छत्रपति को काव्यमय श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए गाया—'सुदूर किसी एक शताब्दी के एक अप्रसिद्ध दिन में महाराष्ट्र के किसी एक वन पर्वत पर अन्धकार में बैठकर हे राजा शिवाजी, तुम्हारे तेजोज्ज्वल भाल में विद्युत् तरंग के समान यह भाव उत्पन्न हुआ था—'खण्डित-अव्यवस्थित भारत को मैं एक धर्मराज्य के सूत्र में आबद्ध करूंगा।'

सितम्बर 1924 ई. में प्रख्यात मुस्लिम नेता मौलाना शौकत अली ने सावरकरजी से कहा कि वे शुद्धि आन्दोलन बन्द करें। इस पर सावरकरजी ने कहा

पहले वे हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन रुकवाएँ। मौलाना ने चिढ़कर कहा—'यदि मुसलमानों की बातें न मानी गयीं तो उनके विश्व में अनेक देश हैं वे वहाँ चले जाने को मजबूर होंगे।' सावरकरजी ने मौलाना के शब्द सुनकर तुरंत कहा—'प्रतिदिन फ्रंटियर मेल भारत से बाहर जाता है। आप प्रतीक्षा क्यों करते हैं? तुरंत भारत से बोरिया-बिस्तर लेकर अलविदा हो जाइए।' चलती बार खीजकर मौलाना ने सावरकर को संकेत कर व्यंग्य किया—'आप मेरे मुकाबले बहुत बौने (छोटे कद के) हैं अतः मैं आप को दबोच सकता हूँ।' सावरकर ने बिना एक क्षण रुके उत्तर दिया—'मैं आपके चैलेन्ज को स्वीकार करता हूँ। किन्तु क्या आप यह नहीं जानते कि शिवाजी अफजल खां के सामने बहुत बौने थे परन्तु उस नाटे कद वाले मराठा ने कद्दावर पठान का पेट फाड़ डाला था।' इसके बाद मौलाना कुछ न बोल पाया।

रत्नागिरि जेल में वीर सावरकर ने छत्रपति शिवाजी द्वारा संस्थापित स्वराज्य का इतिहास हिन्दू पदपादशाही लिखा। ये लिखते हैं—'मैं अपने हृदय में बहुत दिनों से यह इच्छा संजोए हुए था कि जन साधारण के समक्ष एक ऐसी पुस्तक प्रस्तुत करूं जिससे महाराष्ट्र के इस महान् आन्दोलन एवं क्रान्ति के संदेश का न्यूनाधिक ज्ञान उपलब्ध हो सके।....

वस्तुतः परमात्मा को ही यह स्वीकार था कि मैं अपने उन महान् पूर्वजों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सुअवसर प्राप्त करूं जिन्होंने 16वीं शताब्दी में अपने प्रचण्ड शौर्य और त्याग के बल पर महान् हिन्दू राष्ट्र की स्वतन्त्रता के संरक्षण का महती कार्य सम्पन्न किया।'....किन्तु मराठों की जागृति के आन्दोलन की उत्ताल तरंगों ने तो प्रान्तीय सीमाओं को लांघकर 'अखिल हिन्दू आन्दोलन' का रूप ही ग्रहण कर लिया था।

राजनीतिक रंगभूमि पर शिवाजी के प्रकट होने से पूर्व अर्थात् 1627 ई. से पहले हिमगिरि की गगनचुम्बी शैलमालाओं से हिन्द महासागर पर्यन्त जहाँ कहीं भी हिन्दू और मुस्लिम वाहिनियों में संघर्ष हुआ वहाँ हिन्दुओं को ही पराजित होना पड़ा। कभी हिन्दू सहसा ही अपने नेता के लापता हो जाने के कारण पराजित हुए तो कभी उसके रणभूमि में बलिदान हो जाने के परिणामस्वरूप हार गये अथवा कभी अपने ही किसी मंत्री या सेनापति के विश्वासघात के फलस्वरूप विजयश्री का वरण कर पाने में असफल हो गये। इस प्रकार जब कभी भी दो-दो हाथ हुए, तभी हिन्दुओं की पराजय की कहानी में एक पृष्ठ और जुड़ गया। सिन्धु नरेश महाराज दाहिर सेन का दुर्भाग्य, जयपाल का संघर्ष, अनंगपाल की दृढ़ता, दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज चौहान का पतन, कालिंजर, सीकरी अथवा तालीकोट की घटनाओं को स्मृति पटल पर लाते ही उपरोक्त कथन की सत्यता स्वतः प्रमाणित

हो जाती है। परन्तु जब हिन्दू जाति के भाग्य की बागडोर शाहजी तनय सरजा शिवाजी ने अपने सशक्त हाथों में थामी तो उन्होंने हिन्दुओं के इतिहास से पराजय के पन्ने को फाड़कर उसमें विजय-वरण के अध्याय को संलग्न कर दिया।

इसके बाद इतिहास के इस स्वर्णिम समुल्लास का सृजन हुआ जिसमें हिन्दू राष्ट्र की पावन पताका पुनः कभी यवनों के हलाली परचम के सम्मुख नतमस्तक नहीं हुई।

इस प्रकार इतिहास साक्षी है कि स्वातंत्र्य वीर सावरकर के जीवन में छत्रपति शिवाजी का तेजस्वी प्रकाश बड़े अलौकिक रूप से कार्य कर रहा था। दोनों विभूतियों को शतशः वंदना, कोटिशः अभिनंदन।

'काशीजी की कला जाती, मथुरा मस्जिद होती,
शिवाजी न होता तो सुन्नत होत सब की।'

—कवि भूषण

× × ×

मानवता का अमर अलंकार

शिवाजी के जीवन कार्यों का मूल्यांकन प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार इस प्रकार करते हैं—जहांगीर ने प्रयाग के अक्षयवट वृक्ष को जड़ों से काट डाला था। उसकी जड़ों पर उबलता शीशा उड़ेला था। अविनाशी ऐसे वृक्ष को मैंने पूरा नष्ट किया है ऐसा बड़े गरूर से एलान किया था। परन्तु आगे क्या हुआ? एक वर्ष के अन्दर ही जलकर खाक हुए, उन्हीं जड़ों से वह वटवृक्ष फिर से अंकुरित हुआ। ऊपर से अपने को आवृत किये शीशे के दुर्भेद्य कवचों जैसी ही दासता की श्रृंखलाएँ, अत्याचार आदि हिन्दुत्व के वटवृक्षों को सैकड़ों वर्षों तक ध्वस्त कर सेंध कर बैठे थे। वही वटवृक्ष परकियों के दमन भार में फंसने के बाद भी मरने के बजाय फिर नये सिरे से अंकुरित होते हुए दासता के सीस-कवचों को दूर फेंक कर बढ़ते-बढ़ते गगनचुंबी बनकर खड़ा हो सका, यही बात शिवाजी ने अपने जीवन से साबित कर दिखलायी।

—जदुनाथ सरकार

नास्तिक युग का महानतम आस्तिक

बलिदानी वीरों के पावन रक्त से रंजित हुई इन्द्रप्रस्थ नगरी को एक नये बलिदान का दृश्य भी देखना था। सुकरात का जहर का प्याला, ईसा की सूली तथा मंसूर की फांसी जैसे काण्ड भारत की राजधानी में भी दुहराये गये—केवल देश काल और नाम रूप के भेद के साथ। महाभारत काल, पृथ्वीराज काल तथा मुगलकाल के अनेकानेक बलिदानों के अतिरिक्त बन्दा बैरागी, गुरु तेगबहादुर, सूफी फकीर सरमद शहीद तथा बहादुरशाह के बेटों के बलिदान की रोमांचकारी गाथा अभी पूर्ण विस्मृत नहीं हुई थी जब 30 जनवरी 1948 को युग के महानतम महापुरुष का रक्त प्यासी धरती की प्यास बुझाने के लिए छलनी हुए शरीर से फव्वारों के समान बह उठा। जैसे ईसा ने अपने हत्यारों के मंगल के लिये ईश्वर से प्रार्थना की थी, वैसे ही इस महापुरुष ने अपने हत्यारे का हाथ जोड़कर अभिवादन किया तथा अपना प्राण छोड़ते हुए उच्चारण किया—'हे राम।'

जीवन भर 'राम' में अमिट आस्था वाले तथा मरते क्षण भी राम का पावन नाम स्मरण करने वाले इस अजातशत्रु महापुरुष का नाम इस युग का सर्वप्रसिद्ध नाम है —महात्मा गांधी।

इस महात्मा के महत्त्व का रहस्य क्या है? चारित्रिक गौरव की कुंजी क्या है? यह महान् संत स्वयं कहता—'संसार में अनेक राजनीतिज्ञ मिलेंगे जो धार्मिक पुरुष के वेश में कार्य करते होंगे। मैं राजनीति के क्षेत्र में काम करने वाला हृदय से धार्मिक-पुरुष हूँ।'

अन्तस्तल की भक्ति-भागीरथी

जैसे सूखी मरुभूमि अथवा कठोर पठार के अन्तस्तल में शीतल जल की कोई निर्झरिणी अदृश्य रूप में बह रही हो वैसे ही गांधीजी के राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकलाप के भीतर ईश्वर भक्ति की ऐसी मधुर गंगा बहती थी जिसके दर्शन किये बिना गांधी जीवन दर्शन की कुंजी मिलना कठिन है।

इस परम भागवत महात्मा के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं—

देवपुत्र था निश्चय ही
जन मोहन मोहन।
सत्य चरण धर जो पवित्र
कर गया धराकण॥
विचरण करते संग उसी के
विविध युग वरद।
राम, कृष्ण, चैतन्य
मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद॥

हृदय-परिवर्तन

सन् 1869 में काठियावाड़ के पोरबंदर नामक स्थान में एक सामान्य वणिक करमचन्द के घर में जन्म पाने वाला एक साधारण-सा बच्चा कभी एक महान् लोकनायक बनेगा, यह कौन जानता था? अपने बचपन में ही विषय-विकारों के पंकिल-गर्त में फंसा हुआ, शरीर का दुबला, मन का कायर, मांस-मदिरा का व्यसनी, बीड़ी-सिगरेट का आदी, चोरी, झूठ तथा दुराव-छिपाव के स्वभाव वाला मतिभ्रष्ट, पथ-भ्रष्ट बालक कभी सत्य तथा अहिंसा का अवतार, धर्म तथा नीति का देवता बनकर विश्व भर में पूजित होगा, यह किसे ज्ञात था? किन्तु हृदय-परिवर्तन के ऊँचे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले भारत ने जहाँ रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया, एक महामूर्ख, अनपढ़-गंवार को कविकुल गुरु कालिदास बना दिया, नारी के प्रेम में अंधे हुए एक कामी युवक को भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास बना दिया, बंगाल के महानास्तिक तरुण बाबू नरेन्द्र को स्वामी विवेकानन्द बना दिया—वहाँ इसी देश की मिट्टी ने काठियावाड़ के एक बनिये के विकृतमति बालक को विश्ववंद्य महात्मा गांधी बना कर दिखा दिया।

नास्तिक युग में ईश्वर विश्वास

आज का युग विज्ञान का युग माना जाता है। डार्विन ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मनुष्य को ईश्वर ने नहीं बनाया, वह बन्दरों की सन्तान है। डा. फ्रॉयड ने समाज की नैतिकता को व्यक्ति का शत्रु बताया तथा ईश्वर को बच्चों का मन-गढ़न्त आश्रय बताया। इतना ही नहीं उसने 'राम' के स्थान पर 'काम' को ही विश्व का अन्तिम सत्य घोषित कर दिया। भौतिकवाद ने 'आत्म' के स्थान पर 'एटम' को ही 'अल्ला' बताया और साम्यवाद ने विश्व की समस्याओं का केन्द्र 'अर्थ' में ही खोजा। इस घोर नास्तिकता के युग में पुनः ईश्वर में सजीव विश्वास को लेकर आने वाले इस महान् सन्त, महात्मा गांधी की खुली चुनौती थी—'मेरा दावा है

कि मेरा एकमात्र सहारा भक्ति और प्रार्थना है और, यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये जायें तो भी ईश्वर मुझे वह शक्ति देंगे कि मैं उनसे इन्कार न करूंगा, यही जोरों से कहूँगा कि वे हैं।'

तारक मन्त्र 'राम'

प्रायः संदेह किया जाता है कि जैसा रामायण में वर्णित है, 'राम-राम' लिखने मात्र से समुद्र में पत्थर कैसे तैरे होंगे। गांधीजी का दावा है कि पत्थर तैरने की बात तो दूर, राम नाम के प्रभाव से इन्सान तैरते भी देखे गये हैं और यह सच भी है। रत्नाकर डाकू कैसे तरा, तुलसीदास के प्रारम्भिक जीवन का पाप-पंक कैसे धुला? स्वयं गांधी अधमात्मा से महात्मा कैसे बने? स्वयं गांधीजी के शब्दों में, 'मैं संसार में यदि व्यभिचारी होने से बचा हूँ तो राम नाम की बदौलत। मैंने दावे तो बड़े-बड़े किये हैं, किन्तु यदि मेरे पास राम नाम न होता तो तीन स्त्रियों को मैं बहिन कहने के लायक न रहा होता। जब-जब मुझ पर विकट प्रसंग आये हैं, मैंने राम का नाम लिया है और बच गया हूँ।'

रामनाम से प्राणरक्षा और प्रण-रक्षा

जब गांधीजी का अपना सगा पुत्र रामदास मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था और सभी डाक्टरों ने निराशाजनक जवाब दे दिया था, उस समय भी गांधीजी का राम-विश्वास चलायमान नहीं हुआ था। कुछ डाक्टरों ने कहा कि उसे अण्डा और मांस इत्यादि दिये बिना बचने की एक प्रतिशत भी सम्भावना नहीं है। गांधीजी ने आपद्-धर्म का बहाना करके बच्चे के प्राण बचाने के लिए भी हिंसा को स्वीकार नहीं किया। सारी रात राम नाम स्मरण करते रहे और बच्चे के मुंह में गंगाजल डालते रहे। उनकी निष्ठा के चमत्कार से बच्चा सर्वथा निरोग हो गया।

राम ही रक्षक

अपनी रक्षा के लिए उन्होंने कभी किसी को शस्त्र लेकर अपने संग नहीं चलने दिया। अफ्रीका में गोरों के एक आक्रमण के पश्चात् जब बापू जख्मी हो गये, उसके पश्चात् उनके मित्र कैलनवक ने अपनी जेब में रिवाल्वर रखकर बापू की रक्षा के लिए संग चलना चाहा। गांधीजी ने स्पष्ट कहा, 'फेंक दो रिवाल्वर। तुम्हारा विश्वास भगवान् पर है या रिवाल्वर पर? मेरी रक्षा के लिए मेरे साथ आने की जरूरत ही क्या है? क्या मैं भगवान् के हाथ में सुरक्षित नहीं हूँ? जब तक उसे मुझसे काम लेना है, वह अवश्य मेरी रक्षा करेगा।'

गांधीजी के लिए रामधुन की शक्ति फौजी ताकत से सैकड़ों गुना बड़ी थी। उनका रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन भी था। राम ने ही उन जैसे पतित को उन जैसा पावन बना दिया।

हिन्दुत्व का गौरव

आज जैसे कई नेताओं के समान उन्हें हिन्दू कहलाने में कोई लज्जा का अनुभव नहीं होता था, वरन् गौरव का अनुभव होता था। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी श्रद्धांजलि है, 'हिन्दू धर्म ने हमें भय से बचा लिया है। अगर हिन्दू धर्म मेरे सहारे को नहीं आता तो मेरे लिए आत्महत्या के सिवा और कोई चारा नहीं होता। मैं हिन्दू इसलिए हूँ कि हिन्दू धर्म ही वह चीज है जो संसार को रहने लायक बनाती है।'

तुम को मेरी लाज

सत्याग्रह के लिए जाते हुए गांधीजी प्रायः गुनगुनाया करते थे—रघुवर तुमको मेरी लाज, सदा-सदा मैं शरण तिहारी, तुम हो गरीब नेवाज॥

रामभक्तों की परम्परा में एक नई सुनहरी कड़ी जोड़ने वाले इस महान् संत का कहना है, 'रामनाम पोथी का बैंगन नहीं है, वह तो अनुभव की प्रसादी है। जिसने उसका अनुभव किया है वही बता सकता है, दूसरा नहीं।'

गीता तथा रामायण

गीता माता के गौरव में इस महान् आत्मा की उक्ति है—'गीता मेरे लिए शाश्वत मार्गदर्शिका है। मेरे लिए तो गीता ही संसार के सर्व धर्म-ग्रन्थों की कुंजी है। संसार के सब धर्म-ग्रन्थों में जो गहरे से गहरे रहस्य भरे हुए हैं, उनको यह मेरे लिए खोलकर रख देती है।'

वे अन्यत्र कहते हैं, 'मैं खुल्लमखुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका इतना असर नहीं हुआ जितना की श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।' क्या ही अच्छा हो यदि आज गांधीजी के नाम की कमाई खाने वाले नेतागण गांधीजी की महानता के इस रहस्य को समझ पाएं एवं धर्मनिरपेक्ष तथा ईश्वरविहीन जीवन तंत्र को त्याग एक जीवित ईश्वर में जीवित आस्था अपना लें।

अन्तिम यात्रा

गांधीजी की प्रार्थनासभा में जब पहली बार बम का धमाका हुआ तो लोग उठकर भागने लगे। गांधीजी ने डा. सुशीला नैयर को कहा, 'ये लोग भागते क्यों हैं? प्रार्थना में यदि गोलियाँ भी चले तो भागना नहीं चाहिये।' यदि राम नाम गाते मृत्यु हो तो इससे अधिक मंगलमय अवसर क्या हो सकता है! फिर गांधीजी ने कहा—'मुझे इन लोगों की आलोचना करने का क्या अधिकार है? क्या जाने जब स्वयं मुझ पर ऐसा संकट आयेगा तो मैं उसका सामना कर सकूंगा या नहीं। यदि मैं

प्रार्थना-सभा में स्वयं छाती पर गोलियाँ खाकर भी निर्भय रहूँ तथा राम-नाम गाता रहूँ तो समझना कि गांधी ठीक कहता था।'

यह गांधीजी की अपने अलौकिक महाप्रयाण की एक भविष्यवाणी ही थी। ठीक 4-5 दिन पश्चात् 30 जनवरी 1948 के दिन बिल्कुल ऐसा ही संकट उपस्थित हुआ। प्रार्थना-सभा में जनता जनार्दन का अभिनन्दन करने के लिए उनके हाथ जुड़े हुए थे। उनकी नग्न छाती पर गोलियाँ बरसीं, वे निर्भय होकर राम-नाम कहते हुए उस प्रार्थनासभा में देह त्याग कर अमर हुए।

आज इस पुनीत दिवस पर हम अपने हृदय की हरी-भरी क्यारियों के समूचे भाव-सुमन उसी देवता के चरणों में समर्पित करते हैं और उस महान् आत्मा की युग-युग व्यापी प्रेरणा की याचना करते हैं—

राम मरे तो मैं मरूं, नहीं तो मरे बलाय।
पारब्रह्म का बालका, मरे न मारा जाय॥

—कबीर

मेरी दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति के पास जितने समृद्ध भंडार भरे पड़े हैं, उतने किसी के पास नहीं हैं। हमने अपनी संस्कृति को पहचाना ही नहीं....

हम अगर अपनी संस्कृति के अनुसार नहीं जीये तो एक समाज के रूप में हम आत्महत्या की ओर अग्रसर होंगे।

मेरे भीतर की भावना है कि संसार संहार के कारण मरणासन्न है। उसे इससे उबरने के लिये राह चाहिये। मैं आत्मतृप्ति और विश्वास के साथ कह सकता हूँ इस भूखे विश्व के मार्गदर्शन का अधिकार प्राचीन भारत को ही होगा।

—महात्मा गांधी

पं. जवाहरलाल नेहरू का पुनर्मूल्यांकन

भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल अपने मिजाजों के राजा हैं। उनकी महिमा में उनके अनेक प्रशंसकों ने प्रशंसा के पुल तो अवश्य बांधे किन्तु किसी ने उनकी दुर्बलताओं एवं राष्ट्रहित विरोधी बातों की ओर अंगुलिनिर्देश करने का साहस नहीं किया। इसके लिए भी नैतिक साहस एवं बौद्धिक ईमानदारी की आवश्यकता है। प्रजातंत्र के हित में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम बिना पक्षपात की भावना के अपने नेताओं का मूल्यांकन करें तथा उन्हें पथभ्रष्ट होने से बचायें। प्रजातंत्र में प्रजा स्वयं राजा है तथा नेता अथवा शासक तो उसके चुने हुए प्रतिनिधि हैं। अतः प्रजा का कर्तव्य है कि जागरूक रहकर अपने प्रतिनिधियों को राष्ट्र-विरोधी कार्यों से सदा रोकती रहे।

सफल अधिनायक

आज से 21 वर्ष पूर्व नवम्बर 1937 में पण्डित नेहरू ने 'माडर्न रिव्यू' में एक उपनाम से स्वयं अपने बारे में ही लिखा, 'जवाहरलाल ने एक अभिनेता के रंग और पाउडर के बिना अभिनय करना भली-भांति सीख लिया है। अपने लापरवाह से दिखाई देने वाले दल से वह जनता के रंगमंच पर पूर्ण कलात्मक अभिनय करता है। यह सब उसे और देश को कहाँ लिए जा रहा है?'.... जवाहरलाल जैसे व्यक्ति महान् और श्रेष्ठ कार्यों को करने की अपनी क्षमता होते हुए भी प्रजातंत्र में भय का कारण होते हैं। वह अपने को एक प्रजातंत्रवादी, एक समाजवादी कहता है और इसमें सन्देह नहीं कि वह सचाई के साथ ऐसा करता भी है, किन्तु प्रत्येक मनोवैज्ञानिक जानता है कि अन्त में मन हृदय का गुलाम है और न्याय का अर्थ सदा ही मनुष्य की इच्छाओं और दुर्दमनीय आकांक्षाओं के अनुकूल लगाया जा सकता है। जरा सा मुड़े और जवाहरलाल प्रजातंत्र के धीमे चलने वाले ढांचे को एक ओर हटाते हुए एक अधिनायक (डिक्टेटर) बन सकता है। वह तब भी प्रजातंत्र के नारे को काम में ला सकता है, किन्तु हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार फासिज्म सदा इसी भाषा पर पला है और बाद में उसे बेकार कहकर एक ओर फेंकता है। पण्डित नेहरू के यह विचार कितने सच्चे निकले हैं। यह प्रत्येक ईमानदार भारतीय जानता है।

असहिष्णुता

अपने उक्त लेख में वे पुनः लिखते हैं—'जवाहरलाल एक फासिस्ट नहीं हो सकता, तो भी उसमें एक अधिनायक की सभी बातें हैं—भारी लोकप्रियता, निश्चित उद्देश्य के लिए दृढ़ संकल्प-शक्ति, अभिमान, संगठन कौशल, कठोरता। जनता के प्रति प्रेम दिखाते हुए भी दूसरों के प्रति असहिष्णु वृत्ति और दुर्बल तथा अयोग्य के प्रति एक प्रकार की घृणा।' पंजाब निवासी उनके आवेश एवं असहिष्णुता से परिचित हैं। हिन्दी भाषा के समर्थकों को पाँवों तले रौंदने की धमकियाँ तथा घोर अत्याचारी शासन के नेता सरदार प्रतापसिंह कैरों के समर्थन के लिए अपना बलप्रयोग करना इस के प्रमाण हैं।

क्रोधावेश

पण्डित नेहरू की स्वीकारोक्ति है—'उसके क्रोध की तेजी भली-भांति ज्ञात है और जब काबू में कर लिया जाता है तब भी होंठों की मरोड़ उसे धोखा दे जाती है। काम पूरा कराने की उसकी दुर्दमनीय इच्छा, जो उसे पसन्द न हो उसे हटा देने और नया बनाने की इच्छा कठिनाई से ही अधिक समय तक प्रजातंत्र की मन्द गति के साथ उसे रख सके। साधारण काल में वह केवल एक योग्य और सफल शासक होता किन्तु इस क्रान्तिकारी युग में सीजर का भाव सदा ही द्वार पर खड़ा है और क्या यह सम्भव नहीं कि जवाहरलाल अपने को सीजर मान ले?' यह प्रश्नचिह्न आज तक प्रत्येक भारतीय की मेधा को चुनौती है।

अपघटना से हिन्दू

पण्डित जवाहरलाल ब्राह्मण परिवार में भले ही उत्पन्न हुए हैं पर उन्हें पण्डित कहलाना पसन्द नहीं। अपने धर्म के प्रति भी उनका भाव इतना गौरवहीनता का है कि वे कहते हैं, 'मैं एक अपघटना से ही हिन्दू पैदा हुआ हूँ। हिन्दुस्तान मूलतः हिन्दुओं का ही स्थान है तथा भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति ही है। इसलिए जो दुर्भाग्य से हिन्दू है वह दुर्भाग्य से ही भारतीय ठहरता है। इसके मुकाबले में स्वामी विवेकानन्द का कथन है—'अब तक के सारे हिन्दुओं में मैं सबसे अधिक गौरव वाला हिन्दू हूँ।'

गो-ब्राह्मण

गाय तथा ब्राह्मण हमारी संस्कृति के अनादि काल से मानबिन्दु रहे हैं। इन्हीं की रक्षा के लिए भगवान् भी अवतार लेते हैं परन्तु पण्डित नेहरू ऐसे ब्राह्मण हैं जो स्वयं गौ के विरुद्ध हैं। अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में वे लिखते हैं—'आर्य लोग गो-मांस खाते थे....महाभारत में वर्णन आता है कि सम्मानित अतिथियों को गो-मांस और बछड़े का मांस खाने को भेंट किया जाता था।' मैंने स्वयं पण्डितजी को इस बात पर चुनौती दी परन्तु कोई उत्तर नहीं प्राप्त हुआ। जवाहरलालजी ने कभी संस्कृत

नहीं पढ़ी। महाभारत के कभी दर्शन भी उन्होंने नहीं किये! महाभारत काल भगवान् कृष्ण तथा महर्षि वेदव्यास का काल था जब गऊ का पूजन होता था। महाभारत के अनुशासन पर्व के 74/4 श्लोक में भगवान् वेदव्यास स्वयं कहते हैं—'गौ को मारने वाले, उस का मांस खाने वाले तथा उस की हत्या का अनुमोदन करने वाले पुरुष, गौ के शरीर के जितने रोम होते हैं उतने वर्ष तक नरक में पड़े रहते हैं।'

गांधी तथा नेहरू

पण्डित नेहरू ने सन् 1938 में श्री जिन्ना को पत्र में लिखा—'गो हत्या करना मुसलमानों का एक जन्मसिद्ध एवं मान्य अधिकार है। स्वतंत्र भारत में जिसकी रक्षा की जाएगी।' इसके मुकाबले गांधीजी के विचार मनन करने योग्य हैं—'गाय की रक्षा करना भारत की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ रहकर गोवध करना हिन्दुओं का खून करने के बराबर है।'

नास्तिक नेहरू

ईश्वर विश्वास भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। गांधीजी कहते थे—'यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएं तो भी शरीर का प्रत्येक टुकड़ा खड़ा होकर घोषणा करेगा कि ईश्वर है।' जहाँ ईश्वर विश्वास गांधीजी के लिए उनकी श्वास से भी अधिक अनिवार्य था वहीं श्री जवाहरलाल, जो दुर्भाग्य से हिन्दू कहलाने में गौरव मानते हैं, अपनी धर्मशून्य नास्तिकता पर भी बड़ा नाज करते हैं।

क्या प्रत्येक बौद्धिक ईमानदारी वाला भारतीय इस पर विचार करेगा???

16 नवम्बर 1958

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

यदि हिन्दुत्व ने मुझे निराश किया तो मेरा जीवन बोझ बन जायगा। हिन्दुत्व को मुझ से छीन लो तो मेरे पास कुछ भी नहीं रह जाता। यदि में इस्लाम और ईसाई धर्म को प्यार करता हूँ तो अपने हिन्दुत्व के कारण ही।

—महात्मा गांधी

(द्वारा 2 मई 1933 को यरवदा जेल में जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखा)

पाश्चात्य विचारों में भारत का जो विश्वास जगा था, अब तो वह भी हिल रहा है। नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं, न नवीन; और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं। नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड है, न कोई दूसरी ऐसी चीज, जिससे वह अपने चिन्तन या कर्म को नियन्त्रित कर सके।

—जवाहरलाल नेहरू

डा. राजेन्द्रप्रसाद

जिस प्रकार हिमालय जैसे पर्वतराज के गर्भ में कौन-कौन हीरक खनिज छिपे हैं अथवा भारत महोदधि रत्नाकर के तल में कौन-कौन रत्न-माणिक्य भरे हैं यह बताना सहज नहीं, उसी प्रकार हिमालय जैसी महानता एवं महोदधि जैसी अगाधता लिए हुए निरन्तर कर्मरत कर्मयोगी के महान् मस्तिष्क में कैसे-कैसे प्रतिभा के प्रभापूर्ण हीरक तथा अगाध अन्तस्तल में कैसे-कैसे भावरत्न छिपे हुए हैं इसका मूल्यांकन कोई सरल कार्य नहीं। देशरत्न डा. राजेन्द्रप्रसादजी का जीवन हिमालय के धवल श्रृंग की सात्त्विकता एवं हिन्दू महोदधि का गांभीर्य लिए हुए एक सच्चे निष्काम कर्मयोगी का जीवन्त आदर्श था।

शिक्षा का अथ फारसी से, इति अंग्रेजी से, सेवा हिन्दी माता की

ग्राम जीरादेई (छपरा मण्डल), उत्तर बिहार के एक छोटे से निर्धन कृषक परिवार में सन् 1884 में जन्मने वाले भावी राष्ट्रपति बालक राजेन्द्रप्रसाद को अपनी शिक्षा का शुभारम्भ अपने घर पर ही एक मौलवी के पास फारसी की पढ़ाई से करना पड़ा। परिस्थिति की अनोखी विडम्बना यह है कि जिस डा. राजेन्द्रप्रसाद ने बिहार विद्यापीठ की स्थापना का नेतृत्व किया, अनेकों विद्यामन्दिरों का शिलान्यास किया, देश एवं विदेश के असंख्य विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त भाषण दिए, अपनी प्रतिभा एवं सर्वोच्च विद्या द्वारा अनेकों शिक्षा-केन्द्रों का भाग्य निर्माण किया, उसी राजेन्द्रप्रसाद को अपनी शिक्षा का श्रीगणेश, ग्राम में विद्यालयाभाव तथा घर के अर्थाभाव के कारण एक मौलवी के पास फारसी पढ़कर करना पड़ा जो कागज-पत्र, कापी-पेन्सिल के अभाव में घर के पास पड़ी हुई एक पत्थर की छोटी चट्टान पर कोयले से फारसी अक्षर लिखकर पढ़ाता था। राजेन्द्र बाबू ने आठवीं कक्षा में हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ किया। फिर मैट्रिक में पुनः हिन्दी, संस्कृत छोड़कर फारसी ले ली ताकि वकालत के भावी व्यवसाय में कुछ सहायता मिल सके। इण्टर में भी फारसी पढ़ी। बी.ए. में ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी में लेख लिखा तथा उत्तीर्ण हुए। एम.ए., एलएल.बी., एलएल.एम., एलएल.डी. इत्यादि विधि की समूची शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी माध्यम से हुई। फिर भी विगत 50 वर्षों में भारत में जहाँ प्रायः सभी अग्रगण्य नेताओं ने अपनी आत्मकथा

केवल मात्र अंग्रेजी भाषा में ही लिखी वहीं डा. राजेन्द्रप्रसाद ही एकमात्र नेता हैं जिन्होंने अपनी आत्मकथा हिन्दी में लिखी, इस पर नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया, महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा 'सत्यना प्रयोगो' गुजराती में लिखी थी जिससे वह हिन्दी-अंग्रेजी में अनूदित होकर प्रचारित हुई थी। डा. राजेन्द्रप्रसाद ने अपने 9 अन्य ग्रंथ भी मूलतः हिन्दी में लिखे। अंग्रेजी में उन्होंने मात्र एक ग्रन्थ लिखा 'Divided India', ताकि अंग्रेजों को अंग्रेजी में उनके देश-विभाजन के महापाप का दिग्दर्शन कराया जा सके।

कृषि एवं कृष्टि के समन्वय

डा. राजेन्द्रप्रसाद के अन्तर में एक भारतीय कृषक की सरलता एवं सात्त्विकता झलकती थी। भगवान् वेदव्यास ने कहा है—

सर्वं जिह्मं मृत्युपदं, आर्जवं ब्रह्मणा पदम्। अर्थात्, सभी कुटिलता मृत्युपद है तथा आर्जव (ऋजुता, सरलता) ही ब्रह्मपद है।

डा. प्रसाद राष्ट्रपति भवन में भी एक भोले-भाले सरल किसान अथवा निर्लिप्त सन्त जैसा जीवन बिताते थे। उक्त भवन की भव्य अट्टालिकाएँ, स्वर्ग तुल्य उद्यान, रंगीन कालीन, राजकीय सज-धज, राजसी शोभायात्राएँ, चमचमाते बैण्ड-बाजे, इन्द्रतुल्य ऐश्वर्य, अन्य दर्शकों पर चाहे जो प्रभाव डालते हों, किन्तु राजेन्द्र बाबू की नैसर्गिक सरलता एवं ग्राम्य ऋजुता पर वे झीना आवरण तक नहीं डाल पाते थे।

लेखन के क्षेत्र में भी डा. राजेन्द्रप्रसाद के सरल व्यक्तित्व की छाप उनकी भाषाशैली पर पड़ी। वे सरल अकृत्रिम तथ्य को सीधी भाषा में कहना तथा लिखना जानते थे, व्यर्थ अलंकारों के बोझ से उसे बनावटी बनाना नहीं। भाषा के रूप एवं श्रृंगार के प्रति उनकी रुचि उतनी ही कम थी, जितनी स्वयं अपनी वेशभूषा के प्रति। उनमें ग्राम्य सरलता थी, नागरी कृत्रिमता नहीं।

जैसे कृषक कृषि द्वारा उत्तम बीजों के चयन, संवर्धन, विकास एवं संरक्षण का कार्य करता है उसी प्रकार एक संस्कृति-संस्कारक समाज में उत्तम संस्कार रूपी बीजों की खेती कर सांस्कृतिक मूल्यों का संवर्धन एवं संरक्षण करता है। इसीलिए कृषि (Agriculture) के अनुरूप मानव संस्कृति को कृष्टि (Culture) कहा जाता है। कृषि जड़ खेतों में जड़ बीजों की खेती है। कृष्टि सजीव समाज में सचेतन जीवन-मूल्यों की खेती है। कृषि से व्यक्ति को जीवनदायी आहार मिलता है, कृष्टि (संस्कृति) से समाज को शाश्वत जीवनदायी संस्कार, विचार एवं आचार मिलता है। डा. राजेन्द्रप्रसाद कृषि एवं कृष्टि के समन्वय थे। उनमें कृषक की सरलता के साथ संस्कारक की अलौकिक प्रतिभा भी थी। कृषक धरती में हल चलाने, खाद-पानी देने, बीज बोने, घास-फूस जंगल साफ करने, बाड़ लगाने तथा खेत की

रखवाली करने के पश्चात् कर्तव्य के सन्तोष को पाता है। उपज रूपी फल के लिए वह भगवान् की दया पर निर्भर रहता है। अतः कृषि निष्काम कर्मयोग की प्राथमिक पाठशाला है। कृष्टि (संस्कृति) उसी निष्काम कर्मयोग की परमावस्था है जिसमें समाज रूपी परमेश्वर की सर्वतोभावेन सेवा करके, अपने कर्म रूपी पुष्पों से परमेश्वर की पूजा करके, कर्मफलों का नैवेद्य भी उसी प्रभु के चरणों में चढ़ा दिया जाता है। राजेन्द्र बाबू ऐसे सरल, सात्त्विक, निरहंकार, निष्काम कर्मयोगी थे।

संस्कृत एवं संस्कृति

संस्कृत के महत्त्व पर डा. राजेन्द्रप्रसाद के विचार बड़े श्रद्धापूरित हैं। 'संस्कृत विद्या' पर मेरी अगाध श्रद्धा है क्योंकि इसमें ज्ञान का भण्डार है....उस भण्डार में से ढूंढ़-ढूंढ़कर कुछ ऐसी मूल्यवान वस्तुएँ निकाली जा सकती हैं जिनको संसार ने अभी तक नहीं पाया है।' संस्कृत को संस्कृति की भाषा मानते हुए वे कहते हैं, 'संस्कृत का अभ्यास और पठन-पाठन क्यों प्रोत्साहित किया जाय?....क्योंकि हमारी संस्कृति और सभ्यता का स्रोत इसी से निकला है और आज तक जारी है।'

संस्कृत को सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी बताते हुए डा. राजेन्द्रप्रसाद लिखते हैं, 'इस भाषा के ज्ञान पर ही आज के यूरोपीय भाषा-विज्ञान की नींव पड़ी है। संस्कृत का अभ्यास करने पर ही उन्होंने उसमें और यूरोपीय भाषाओं में वह सम्बन्ध देखा जिससे वे संस्कृत, फारसी, लातीनी, यूनानी, स्लाव, त्यूतोनी, केलती इत्यादि भाषाओं को एक वंश की बतला सके।'

अपनी पुस्तक संस्कृत और संस्कृति में डा. राजेन्द्रप्रसाद ने संस्कृत वाङ्मय, इतिहास, कला और विज्ञान के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुत शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है।

शिक्षा का भारतीयकरण

डा. राजेन्द्रप्रसाद शिक्षा के भारतीयकरण के पूर्ण समर्थक थे। वे लिखते हैं, 'हमारी नीति है कि हम अपने बच्चों को भारतीय रखें, न कि उन्हें विदेशी बना देवें। इसलिए हमारी उच्चकोटि की शिक्षा भी मातृभाषा द्वारा ही दी जानी चाहिए।' दीक्षान्त समारोहों के भारतीयकरण के प्रबल समर्थक राजेन्द्र बाबू अपने सभी दीक्षान्त भाषण हिन्दी में देते थे तथा उनमें भारतीय जीवनमूल्यों का प्रबल प्रतिपादन करते थे। अपने एक दीक्षान्त भाषण में स्नातकों को सम्बोधन करते हुए वे कहते हैं, 'सरस्वती के इस प्रसिद्ध मन्दिर में कई वर्ष की साधना और तपस्या के उपरान्त आज आप स्नातक भाइयों ने उसका वरदान पाया है—यह वरदान, जो आपके जीवन में आपके लिये अमोघ कवच होगा, और जो होगा आपकी जीवनयात्रा का अक्षय संबल।'

मदनमोहन मालवीयजी

'मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूं। यौवन काल से आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न है। मैं उनको सर्वश्रेष्ठ हिन्दू मानता हूं। वे आचार में नियमित और विचार में बड़े उदार हैं। वे किसी से द्वेष कर ही नहीं सकते। उनके विशाल हृदय में शत्रु भी समा सकते हैं।'—महात्मा गांधी

'मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि विभिन्न मतों के मध्य केवल मालवीयजी महाराज ही भारतीय एकता की मूर्ति बने खड़े हैं।'—ऐनी बेसेंट

वंद्य मालवीय! तुम्हें भूल न सकेंगे हम,
दीनदुखियों के सुखदायक तुम्हीं रहे।
पुरुष अनेक पुरुषोत्तम तुम्हीं थे एक,
शर है असंख्य किन्तु सायक तुम्हीं रहे।।

विश्वबंधुता के गीत गायक बहुत,
पर सबके सुहृद, सब लायक तुम्हीं रहे।
होते जगती में जन-नायक अनेक,
किंतु हिन्दुओं के एक ही सहायक तुम्हीं रहे।।

('राम') -रा.श्री

वंश, जन्म, शैशव—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का जन्म तीर्थराज प्रयाग में 25 दिसम्बर, सन् 1861 को हुआ। इनके पूर्वज मालवा से प्रयाग आ बसे थे। उनके पिता श्री व्रजनाथजी पक्के सनातन धर्मी एवं आस्तिक थे। उनका भगवद्विश्वास अखंड था। श्रीमद्भागवत की कथा या पूजा-पाठ ही आजीविका थी। कोई स्वत: बुला ले जाए तो पंडित जी चले जाते। धर्मपत्नी के यह कहने पर कि घर में भोजन के लिए कुछ नहीं है, उनका बंधा-बंधाया उत्तर था—'कोई कथा या पूजा के लिए बुलाये, तब कुछ प्रबंध हो।' लेकिन दान लेने के वे इतने विरोधी थे कि उदार पड़ोसियों की सहायता भी मालवीयजी की माता छिपाकर ही स्वीकार करती थी। ऐसे विशुद्ध आस्तिक माता-पिता का प्रभाव मदनमोहन पर पड़ना ही था। मिर्जापुर के प्रख्यात सनातनी पंडित श्री नंदरामजी की

कन्या कंदन देवी से मालवीयजी का विवाह हुआ। उनका दाम्पत्य जीवन बड़ा सुखमय व्यतीत हुआ। सती-साध्वी पत्नी ने सदा उनका अनुगमन किया।

हिन्दू महासभा—हिन्दू महासभा के तो महामना जन्मदाता थे। सन् 1909 ई. में इंग्लैण्ड से लौटकर लाला लाजपतराय ने पं. मदनमोहन मालवीयजी के सहयोग से हिन्दू महासभा की स्थापना की।

कांग्रेस द्वारा मनोनीत, सन् 1931 में गोलमेज परिषद् की बैठक में भाग लेने लंदन जाने से पूर्व सत्याग्रह आन्दोलन के वे प्रमुख कर्णधार रहे थे और उनके व्यापक प्रभाव के कारण अंग्रेज-सरकार को बहुत सोचना पड़ा था, उन्हें केवल कुछ दिनों के लिए ही बंदी बनाने के संबंध में। एकमात्र महामना ही राष्ट्रीय कांग्रेस के ऐसे प्रमुख नेता थे जिनका प्रभाव देश के प्रत्येक वर्ग पर समान रूप से था।

पत्रकारिता—कालाकाँकर में ही महामना के पत्रकार जीवन का प्रारंभ हुआ। वहां से प्रयाग आने पर उन्होंने 'अभ्युदय' और 'इंडियन ओपिनियन' पत्रों का सम्पादन कार्य हाथ में लिया।

स्वदेशी आन्दोलन—वे तो स्पष्ट कहते थे—'विदेशी कपड़े मत पहनो, यह कहना ही द्वेषमूलक है। हमें तो कहना है—स्वदेशी ही पहनो।'

महामना को राजनैतिक जीवन के लिए कालाकाँकर नरेश राजा रामपाल सिंहजी से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

अतिथि सत्कार—पूज्य मालवीयजी का गृह अपने अतिथि सत्कार के लिए विख्यात था। उनके घर का चूल्हा प्रातः सूर्योदय के साथ जल जाता। चाहे कोई किसी समय प्रस्थान करने वाला हो। जो आया है उसे तो भोजन करके ही जाना चाहिए। रात्रि के एक बजे तक चौका चलता रहता।

गो रक्षा, गंगा—जब वे गोलमेज परिषद् में महात्माजी के साथ लंदन गए, उनके साथ गंगाजल, मिट्टी और गो भी भारत से गई थी। अतिथि, ब्राह्मण और गो—यही तो हिन्दू के आराध्य हैं।

जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी एक ही धुन थी—प्रत्येक समर्थ मिलने वाले से उस असमर्थ महाप्राण की एक ही याचना होती थी—'मैं गायों की सेवा न कर सका। एक स्थान पर एक गोशाला में एक लाख गायें सुख से पलें—मेरी यह लालसा रह गई।' गोसेवा के लिए, गोचरभूमि के लिए, गोशालाओं के लिए उनका उद्योग कम नहीं था। उनसे किसी सामान्य व्यक्ति ने भी गो के नाम पर कोई सहायता चाही तो उन्होंने कभी अस्वीकार नहीं किया। उनका कहना था—'प्रत्येक हिन्दू के घर में कम से कम एक गाय रहनी ही चाहिए।'

धर्म सेवा—पूज्य मालवीयजी कट्टर हिन्दू थे। हिन्दू सिद्धान्तों की उन्हें सजीव मूर्ति कहना चाहिए। आचार में अत्यन्त संयमी और विचार में परम उदार—हिन्दू धर्म की यह विशेषता उनमें बहुत स्पष्ट थी। उनका स्पर्शास्पर्श का विचार इतना पूर्ण था कि बड़े जंक्शनों के प्लेटफार्म पर एक ओर चौका लगाकर स्वयं खिचड़ी बना लेना उनके लिए सामान्य बात थी। मालवीय परिवार से बाहर किसी के हाथ का कच्चा भोजन वे नहीं करते थे।

ब्राह्मणभक्ति—पूज्य मालवीयजी को लोग ब्राह्मणों का पक्षपाती कहने लगे थे। वे कहा करते थे—'कोई ब्राह्मण मेरे पास किसी उद्देश्य से आए और निराश लौटने लगे तो मेरे प्राण उससे पहले चले जाने चाहिए।' प्राणपण से उन्होंने ब्राह्मणों की सेवा की।

हिन्दुत्व—हिन्दू संगठन, हिन्दू धर्म ही उनका प्राण था।

भगवद् भक्ति—'मैं पुराणों की सत्यता के संबंध में प्रत्येक समय शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हूं।' महामना की यह घोषणा केवल मौखिक नहीं थी। पुराणों पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। श्रीमद्‌भागवत का पाठ उनका नियमित रूप से चलता था। लंदन के अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम में भी उन्होंने अपने पाठ में विराम नहीं पड़ने दिया। उन्हें प्राय: सम्पूर्ण भागवत कंठस्थ थी और जब वे गद्‌गद कंठ से भाव समझाते हुए श्रीमद्‌भागवत के श्लोक पढ़ने लगते थे तब उनके दोनों नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बह निकलती थी।

शिक्षा सेवाएं—'एक साथ एक लाख ब्रह्मचारी एक स्थान पर सस्वर सामगान करें।' यह महत्त्वाकांक्षा थी, जिसने महामना को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में लगाया। विश्वविद्यालय उनकी भारत को अमर भेंट है। विश्वविद्यालय के लिए कुछ सहायता प्राप्त किये बिना वे भोजन तक नहीं करते थे। जीवन के अंतिम वर्षों तक उनका यह नियम चलता रहा और तभी बंद हुआ, जब वे सर्वथा असमर्थ हो गए।

सहृदयता, दयालुता, उदारता—वृद्धावस्था, रोगशय्या, इतना दुर्बल शरीर कि उठकर बैठना कठिन। श्रवण एवं नेत्रों में शक्ति नहीं। कोई बात स्मरण नहीं रहती थी और इस स्थिति में भी महामना विश्वविद्यालय के गरीब छात्रों के सहायक, पितातुल्य थे। दु:खियों के आश्रयदाता थे। उत्पीड़ितों के शरणद थे। राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधारों के मंत्रदाता थे। सब उस पितामह के पास उस स्थिति में भी पहुंच जाते और संतुष्ट होकर ही लौटते।

सब जानते हैं कि लंदन से लौटने पर उन्होंने समुद्र यात्रा का सविधि प्रायश्चित्त किया था। इतने आचार प्रधान होने पर भी उनका विचार इतना उदार था कि वे कभी किसी दूसरे पर कोई दबाव देते ही नहीं थे।

उद्बोधक विचार—उन्होंने कहा था—'जो हिन्दुओं को शांति के साथ नहीं रहने देना चाहते, उनके साथ किसी प्रकार की सहिष्णुता नहीं हो सकती।.... हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म खतरे में है। परिस्थिति संकटापन्न है। ऐसा समय आ गया है कि हिन्दू एक होकर सेवक तथा सहायता की साधना को परिपुष्ट करें। आज भी उन महापुरुष की चेतावनी वैसी ही नहीं है—कैसे कहा जा सकता है?

नोआखली काण्ड—नोआखली का वह पैशाचिक हत्याकांड, जराजर्जर, रोगकृश महामना ने वह समाचार सुना और उनका हृदय करुणा से बिद्ध हो गया। वह यह धक्का सम्हाल नहीं सके। यह सभी जानते हैं कि नोआखली कांड ने ही 12 नवम्बर, सन् 1946 को महामना का बलिदान लिया।

महात्मा गांधी उन्हें बड़ा भाई कहते थे। राजे-महाराजों के वे पूज्य थे। धार्मिक जनता के देवता और सम्पन्न वर्ग के परम आदरणीय थे। ब्रिटिश सरकार के उच्च कर्मचारी उनके प्रभाव से परिचित थे और उनका पूरा सम्मान करते थे।

एक सच्चा मानव, एक सच्चा आदर्श हिन्दू, एक सच्चा महापुरुष आया और चला गया। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन ने उससे बहुत कुछ पाया और बहुत कुछ पाया हिन्दू जाति ने। किन्तु, यदि राष्ट्र के कर्णधार और हिन्दू एक होकर उनके आदर्श को स्वीकार कर लेते, भारत सचमुच ऋषियों का भारत हो जाता। हिन्दू संस्कृति पुनर्जीवन प्राप्त कर लेती। क्योंकि महामना स्वयं हिन्दू संस्कृति, सादगी, सदाचार एवं आदर्श की जीवित प्रतिमा थे।

न दाता सुखदुःखानां न च हर्तास्ति कश्चन।
भुञ्जते स्वकृतान्येव दुःखानि न सुखानि च।।

गरुड़ पुराण, 221/8

न कोई किसी को सुख-दुःख दे सकता है, न ही कोई किसी के सुख-दुःख का हरण कर सकता है। सभी अपने किये हुए कर्म के अनुसार ही सुख-दुःख का भोग करते हैं।

× × ×

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्म सूत्रे ग्रथितो हि लोकः।।

उ. रामायण

× × ×

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।

मानस, 2/91/4

महामना मालवीयजी का उद्बोधक सन्देश

ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला, मल्लशाला प्रति पर्व महोत्सवः॥

(मालवीयजी द्वारा स्वरचित)

1. राष्ट्र जागरण के लिये ग्राम-ग्राम में सभा होनी चाहिये (जिससे गांव की उन्नति का सामूहिक विचार होता रहे)।
2. ग्राम-ग्राम में सामाजिक एकता का निर्माण करने हेतु सामूहिक रूप में पवित्र भगवद्कथा होनी चाहिये।
3. प्रत्येक ग्राम में पाठशाला हो (जिससे विद्या का प्रसार हो, सामाजिक चेतना जागे, अपराध कम हों, लोग रामायण, महाभारत आदि पढ़कर भारत की प्राचीन महिमा जानें)।
4. प्रत्येक ग्राम में मल्लशाला हो (जिससे बालक और तरुण प्रतिदिन कुश्ती, कबड्डी, भारतीय खेल खेलें, तेल मालिश करें, बजरंग बली की जय बोलें तथा वज्र जैसे अंगों वाले बन जावें)।
5. प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक सांस्कृतिक पर्व (मकर संक्रांति, वसन्त, वर्ष-प्रतिपदा, होली, श्रावणी, गुरुपूर्णिमा, तुलसी जयन्ती, श्री कृष्णजन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली, गीता जयन्ती आदि) पर एक विराट सामूहिक महोत्सव होना चाहिए (जिससे समाज के सभी घटकों में यह भावना जागे कि वे एक ही पावन संस्कृति भागीरथी में अवगाहन कर रहे हैं)।

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैनाश्च सोगताः।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम्॥

(मालवीयजी द्वारा स्वरचित)

सभी भारत धर्मी भरत सन्तानों, सनातन धर्मी, आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी, देव समाजी, प्रार्थना समाजी, सिक्ख समाजी, जैन समाजी, बौद्ध समाजी, शैव, शाक्त, वैष्णव, लिंगायत, निर्गुण मार्गी, सगुण मार्गी, कबीर पंथी, दादूपंथी, राधा स्वामी, स्वामीनाथ धर्मी इत्यादि-इत्यादि, सभी को चाहिये कि वे अपने-अपने

विशेष व्यक्तिगत धर्म (उपासना पद्धति) का पालन करते हुए (अपने समाज धर्म की रक्षा हेतु) एक-दूसरे से परस्पर प्रेम एवं आदर का व्यवहार करें।

बहुकृत्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।
विश्वस्तत्वं भयस्थाने हा पुत्रक! विहन्यसे॥

(महाभारत से मालवीयजी द्वारा उद्धृत)

'हे पुत्र! तुम्हें बहुत काम करना है, किन्तु तुम कुछ उद्योग नहीं कर रहे हो। यह जागने का समय है, किन्तु तुम सो रहे हो, तुम्हारे सामने भय का स्थान उपस्थित है, किन्तु तुम विश्वास किये निश्चिन्त पड़े हो। हे प्यारे पुत्र! तुम इस तरह से मारे जाओगे। जागो! जागो!'

मैंने सदा ही सनातनी हिन्दू होने का दावा किया है। क्योंकि—

मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य हिन्दू शास्त्रों में और इसलिये अवतारों व पुनर्जन्म में विश्वास करता हूँ।

वर्णाश्रम धर्म का सिद्धान्त मुझे स्वीकार्य है, किन्तु आज के विकृत और भोंडे रूप में नहीं, अपितु मूल वैदिक रूप में।

गो रक्षा के प्रति मेरा सामान्य से अधिक आग्रह है।

मूर्ति पूजा में मुझे अविश्वास नहीं है।

और मैं कट्टर हिन्दू हूँ इसलिये मैं समस्त सृष्टि से प्रेम कर सकता हूँ।

—महात्मा गांधी

× × ×

महमूद गजनवी ने जो हीन, जंगली और असंस्कृत कृत्य किये क्या उनके बारे में यहां के मुस्लिम गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसा है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए भी यह हानिकारक है। गजनवी ने जो किया था, बहुत बुरा किया था। इस्लामी राज में जो बुराइयां हुई हैं उन्हें मुसलमानों को समझना और कबूल करना चाहिए। गुनाह कबूल करने से हलका होता है। भारत में बैठकर मुसलमान अगर अपने लड़कों को सिखायें कि गजनवी को आना है तो उसका मतलब यह हुआ कि वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को खा जाओ। इसे कोई बर्दाश्त करने वाला नहीं है।

—महात्मा गांधी

डाक्टर केशव बलिराम हेडगेवार

इस आधुनिक काल में, जिस काल में हम जी रहे हैं, उसी विक्रम की परंपरा को, भारत के विक्रम को, भारत के पराक्रम को पुनः जगाने के लिये एक महापुरुष का अवतार इसी विक्रम संवत् को हुआ। वे थे डॉ. हेडगेवारजी। आद्य सरसंघचालक जिनको प्रणाम हमने किया। आप हैरान होंगे कि जिस बालक को अतिशय निर्धनता ने जकड़ रखा था। जिस बालक के नन्ही-अवस्था में (मात्र 6-7 वर्ष की उम्र में) माता-पिता दोनों प्लेग के शिकार होकर एक ही दिन काल-कवलित हो गये। जिस बालक को पालने-पोसने वाला कोई बचा नहीं। जिस बालक को अपने भोजन तक के लिये समस्या थी कि किस तरह अपने जीवन को चलाने के लिये भोजन प्राप्त करे। उस बालक ने अध्यवसाय से, परिश्रम से, ऊंची शिक्षा प्राप्त की। डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त करके भी अत्यंत अभाव में रहा। उस बालक ने डाक्टर बनने के बाद एक पैसा भी अपने लिये नहीं कमाया, उसने सारी योग्यता, सारा जीवन, सारा पुरुषार्थ, सारा कर्तृत्व भारतमाता के चरणों में समर्पित कर दिया।

उस बालक के मन में प्रारंभ से एक बात खटकती थी। ये दुष्ट अंग्रेज सात समुद्र पार से भारत में आये व्यापार करने के लिये और यहाँ शासक बन गये। वे प्रायः कहते थे The British reign in India is the greatest Historical Mockery. इतिहास का सबसे बड़ा मजाक है भारत में ब्रिटिश साम्राज्य। वह कहते थे कैसे? यदि मैं मान लूं हिन्दुस्तान की कोई Firm, रांची की Firm, कोई बोकारो की Firm अमेरीका में व्यापार करने के लिये जाय और वहाँ जाकर साइनबोर्ड लगा ले Indian Trading Co. और कोई कोयले का व्यापार करे, कोई चाय का व्यापार करे, कोई चीनी का व्यापार करे और व्यापार करने वाली कंपनी धीरे-धीरे पूरे अमेरीका पर राज्य करने लग जाय। वे कहते थे, क्या कल्पना की जा सकती है? इतना बड़ा मजाक हो गया है कि ब्रिटिश लोग व्यापार करने के लिये आये और यहाँ शासक बन बैठे। इसलिये उनके मन में बड़ी चुभन होती थी कि ये विदेशी शासन भारत से निरस्त होना चाहिये। उससे पहले के भारत के हजार वर्ष की पराधीनता का काल, ये भी उनके मन को बड़ा कचोटता था। हम सब इतिहास पढ़ते हैं। कल मेरे पास एक इतिहास में एम. ए. पास किया हुआ विद्यार्थी बैठा था। एक दूसरा था Research करने वाला।

उससे दो-चार क्षण की बातचीत हुई तो मुझे लगा केवल पुस्तक-ज्ञान है। कुछ तथ्य घोट लिये, कुछ तथ्य रट लिये और परीक्षा भवन में रटी हुई चीजों को कै करके निकाल दिया, परीक्षा भवन में जाकर लिख दिया, मुहर लग गयी बस एम. ए. पास कर लिया। इतिहास से कुछ सीखा नहीं। इतिहास का बच्चा कहता है मैंने इतिहास का पाठ पढ़ लिया। अरे! क्या इतिहास का पाठ पढ़ लिया? What is the Lesson of History? इतिहास का पाठ क्या है? डॉ. हेडगेवार के मन में यही प्रश्न कचोटता रहता था। इतिहास हमें क्या सिखाता है? क्या केवल किताब में पढ़ लेना, उसको उत्तर पुस्तिका में लिख देना, मास्टर पूछे तो रट करके सुना देना, यह क्या इतिहास का पाठ हुआ। इतिहास से हमने कुछ नहीं सीखा। इतिहास कुछ चेतावनियों से भरा हुआ है। इतिहास हमारी भूलों का, इतिहास हमारे किये हुए राष्ट्रीय अपराधों का लेखा-जोखा है। इतिहास हमारी विजय और पराजय की कहानी है। उत्थान-पतन की कहानी है। कब हम ठीक रास्ते थे तो हम विजयी हुए? कब हम गलत रास्ते थे तो हम पराजित हुए? हमें उससे कुछ सीखना, इसलिये उससे कुछ सीखने के पीछे लगे रहते थे। इतिहास हमें क्या सिखाता है? इतिहास ने हमें सिखाया हमारे देश में राष्ट्रीय चरित्र का अभाव था। इसलिये कोई भी व्यक्ति दर्रा खैबर में खड़ा होकर देखता भारत की ओर—यहाँ मौज-मंगल है। जिसको मरजी, लूट लो। हिन्दुस्तान सोया हुआ है, सोये हुए हिन्दुस्तान को लताड़ करके कोई भी निकल जाय।

अत्यंत अफसोस की बात है कि मुहम्मद बिन बख्तियार, जो खुद पहले गुलाम था, बाद में उसकी विजेता बनने की साध हुई, उसने 17 घोड़े लिये, 17 घुड़सवार लिये, 17 तलवारें ली, उनको लेकर चला। नैमिषारण्य का तीर्थ जो गोमती नदी के किनारे पर है वहाँ पर मार-काट मचायी। गोमती नदी का पानी लाल कर दिया। उस तीर्थ का नाम रख दिया यवनपुर जिसको आजकल आप जौनपुर कहते हैं। उसके बाद आगे बढ़ा तो बनारस में मार काट मचायी, गंगा का पानी लाल कर दिया। वहाँ से आया नालन्दा। नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले नौजवान पढ़ते थे। एक हजार आचार्य पढ़ाते थे। क्या दस हजार नौजवान 17 को खत्म करने के लिये काफी नहीं थे? पर दुर्भाग्य देश का। हम करोड़ों थे, पर बिखरे थे। अरे हिन्दू! तुमने बिन्दु का जीवन जीया, तुमने सिन्धु का जीवन नहीं जीया। बिन्दु-बिन्दु करके तू बिखरा रहा, तू मार खा गया। ये दर्द कचोटता था डॉ. हेडगेवार के दिल में। तू बिन्दु रहा। तू सिन्धु नहीं बना। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि 17 सैनिक आकर 10 हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वालों को मार दें। स्नातकोत्तर का मतलब पोस्ट ग्रेजुएट माने बी.ए. के बाद की उपाधि पाने वाला। उच्च विश्वविद्यालय था। वहाँ साधारण शिक्षा नहीं होती थी। स्नातकोत्तर की शिक्षा होती थी। तो दस हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले

नौजवान, जो सब 20 वर्ष से ऊपर की अवस्था के थे, ऐसे नौजवान वहाँ पढ़ते थे। और एक हजार आचार्य थे पर 17 सैनिकों की तलवारें एक साथ पड़ती थी। 17 एक साथ टूट पड़ते थे और हमारे हजारों लोग अलग-अलग बिखर जाते थे। हरेक अपना प्राण लेकर भागता था। विश्वविद्यालय को आग लगा दी। 4-5 महीने तक आग नहीं बुझी। दुनिया का सबसे भरपूर खजाना ज्ञान का, धूलि-धूसरित हो गया। विद्यार्थियों को मारकर बोरों में बंद करके नदी-तालाबों में फैंक दिया गया। आचार्यों की दुर्गति हुई। यह कोई देश का इतिहास है? चुल्लू भर पानी में डूब मरने वाला इतिहास है। ये इतिहास की चेतावनियाँ हैं। हम इतिहास के पृष्ठों पर इसको पढ़ते हैं तो हमारे दिल में कोई जलजला नहीं उठता। हमारे दिल में बेचैनी नहीं उठती। कोई व्यथा नहीं जागती। अरे! तुम्हें लानत, तुम भारत के पुत्र नहीं हो। भारत की यह दुर्गति हो गई! तुम्हें हजारों वर्षों के बाद भी यह दर्द दिल को छूता नहीं है? हेडगेवार के दिल को यह दर्द छूता था। हाय, यह क्यों हुआ? क्यों हुआ ऐसा? हम केवल पढ़ लेते हैं। आज से 2300 साल पहले मेकडोनिया का सिकंदर भारत पर हमला करने आया। सिकंदर का हमला हुआ, हूणों का हमला हुआ, शकों का हमला हुआ। परसियन का हमला हुआ, तुर्क, ततार, मुगल, पठान का हमला हुआ, ईरान, यूनान, फ्रेंच, डच, अंग्रेज का हमला हुआ। ईरान, इराक, चीन, पाकिस्तान का हमला हुआ। सब हमने पढ़े। हम क्या कर रहे हैं? इतिहास के असहाय मूकदर्शक। जैसे हमारा कोई रोल नहीं है। हमें कुछ नहीं करना हैं। हम केवल कहानी पढ़ने वाले आदमी हैं। भारतमाता की छाती में लगते छुरे के घाव गिनने वाले। हम कपूत हैं सिकंदर का हमला भारतमाता की छाती में एक घाव। मुहम्मद बिन बख्तियार का हमला घाव। मुहम्मद बिन कासिम का हमला घाव। मुहम्मद गौरी का हमला एक घाव। मुहम्मद गजनी का हमला एक घाव। हम घाव गिनने वाले हैं। हमें कुछ करना नहीं है कि यह हमारी माँ है। इसके ऊपर कोई आक्रमण करे तो हमें कुछ करना है, ये कर्तव्यबोध हमारा नष्ट हो गया था। डॉ. साहब ने एक अच्छे डॉक्टर की तरह यह डाइग्नोसिस किया कि क्या कारण था कि भारत, इतना विशाल भारत, इतना महान भारत, इतनी अधिक जनसंख्या वाला भारत, मुट्ठी भर लोगों के सामने लुट गया? दुनिया के हर कमीने देश ने भारतमाता की छाती पर लात मारी, भारत पर लात मारी, हम देखते रहे। कारण क्या था? उन्होंने देखा, राष्ट्रीय चरित्र का अभाव हो गया था। हम लोग व्यक्तिगत जीवन जीने वाले बन गये थे। हमारा बिन्दु का जीवन हो गया था। सिन्धु का जीवन नहीं था। संगठन नहीं था। राष्ट्र की वृत्ति हमारी नष्ट हो गयी थी। हम भी राष्ट्र के हैं, राष्ट्र के पुत्र हैं, राष्ट्र के प्रति हमारा कर्तव्य है—ये चेतना ही लुप्त हो गयी थी। वे इस दिशा में बचपन से ही सोचने लगे थे। इतिहास उनके लिये केवल एक पुस्तक नहीं थी। इतिहास उनके लिये कागज के

पन्ने पर काली स्याही से लिखे हुए अक्षरों की माला नहीं थी। इतिहास उनके लिये चेतावनियों से भरी हुई एक बहुत बड़ी, एक क्रान्ति की ज्वाला थी जिससे उन्होंने मन ही मन निश्चय करना शुरू किया कि मैं क्या करूँ? उनके घर से कुछ दूरी पर एक किला था। सीतामढ़ी का किला। उस पर यूनियन जैक फहराता था। अंग्रेज का राज्य था। उनके मन में निश्चय हुआ किसी तरह यूनियन जैक को हटाना चाहिये। नन्हा सा बच्चा यूनियन जैक कैसे हटाये? उनका एक दोस्त था। दोस्त के घर में पढ़ने के बहाने गये और कमरा बंद करके अंदर ही अंदर सुरंग खोदना शुरू किया। सोचा, नीचे ही नीचे सुरंग खोदकर किले तक जायेंगे और झण्डे को हटा देंगे। काम बड़ा असाध्य लगता है कि नन्हे बच्चे अपने छोटे हाथों से कहाँ तक सुरंग खोदेंगे। दूसरी-तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा और वह सुरंग खोदने जा रहा है। जब एक-आध दिन पूरा अंदर खट-खट होती रही, जमीन खोदी जाती रही, पूरे दिन कमरे से नहीं निकले तो घर के लोगों ने किवाड़ तोड़कर के देखा—अरे! ये सुरंग खोद रहे हैं? कान मरोड़कर बच्चों को हटाया, यह क्या करते हो? लेकिन उसके मन में साध यही थी ये क्यों हुआ? जिसके मन में पीड़ा नहीं होती है माँ के दुःख को देखकर उस लानती व्यक्ति को भारत का पुत्र कहलाने का अधिकार नहीं है। पाँच वर्ष का नन्हा बच्चा स्कूल में पढ़ने गया और रानी विक्टोरिया का षष्टिपूर्ति महोत्सव हो रहा था। साठ वर्ष राज्य करते हुए हो गया। लड्डू बांटे सब बच्चों को। नन्हे से बच्चे ने लड्डू को कूड़े पर फेंक दिया। भाई ने पूछा, क्या आपको लड्डू नहीं मिले? फेंक दिया। क्यों फेंक दिया? कहा कि विदेशी रानी के भारतवर्ष पर राज्य करने के साठ वर्ष पूरे होने की खुशी हम भारत के पुत्र मनायेंगे? हम भारतमाता के पुत्र होकर विदेशी शासन के शासक की खुशी मनायेंगे? यह नहीं हो सकता। रानी विक्टोरिया के मरने के बाद एडवर्ड के शासन की स्थापना हुई। वह जो गंजा बिना ताज वाला राजा बैठा और उसके राज्यारोहण की खुशी में बड़ी आतिशबाजी हुई। बहुत बच्चों ने कहा, केशव चलो देखने के लिये। केशव ने कहा—नहीं। उन्होंने कहा, बहुत लज्जा की बात है। एक विदेशी राजा सिंहासन पर बैठता है और भारत पर शासन कर रहा है। भारतमाता को गुलाम बनाया हुआ है और इसकी खुशी भारत के बेटे मनायेंगे? हमारी माँ को गुलाम बनाने वाले गुण्डे हैं ये और राज्य पर बैठने की खुशी हम मनायेंगे? ये नहीं हो सकता। इस तरह की एक राष्ट्रीय वृत्ति उनमें थी। इसलिये वे बिल्कुल निर्भीक भाव से चल रहे थे। उन्होंने वंदेमातरम् आंदोलन में भाग लिया। लोकमान्य तिलक ने वंदेमातरम् आंदोलन शुरू किया। वंदेमातरम् आंदोलन क्या था? उसके पहले कांग्रेस के अधिवेशनों में इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत गाया जाता था। इंग्लैण्ड का राष्ट्रीय गीत क्या था? हे परमात्मा! राजा की रक्षा करो। हमारे परम दयालु राजा की रक्षा करो। यह इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत है।

कांग्रेस के अधिवेशनों में इसका गान होता था। क्योंकि लार्ड ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की थी जो खुद अंग्रेज थे। इसलिये इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत गाया जाता था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल गरम दल के नेता थे। उन्होंने कहा, लानत है तुम्हें। चुल्लू भर पानी में डूब मरो। भारत पर शासन करने वाले विदेशी राजा की उम्र लंबी करने के लिये प्रार्थना तुम कर रहे हो? भारत के पुत्र होकर प्रार्थना करते हो, विदेशी राजा की उम्र लंबी हो? नहीं, ये नहीं होगा। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने उन्हीं दिनों आनंदमठ लिखा था? योगीराज अरविन्द कहते हैं—संसार के इतिहास में किसी उपन्यास, किसी पुस्तक में ऐसा कोई गीत नहीं है, जिस गीत की पंक्तियाँ, पुस्तक के पन्ने पर काले अक्षर से लिखी हुई पंक्तियाँ, पुस्तक के पन्ने से उछलकर करोड़ों लोगों के हृदयों पर लिखी गई हों और लोगों ने उसको अपना राष्ट्रीय गीत बना लिया हो। बंकिमचन्द्र के गीत में वह शक्ति थी। उस पुस्तक के पन्ने से वे पंक्तियाँ उछल पड़ी करोड़ों की जिह्वा पर, करोड़ों के हृदय पर लिखी गयी और उसके लिये लोगों ने बलिदान दिये। प्राण तक दिये। वंदेमातरम् आंदोलन शुरू हो गया। अरविंद घोष ने आह्वान किया। उस समय डॉ. साहब हाई स्कूल की कक्षा में पढ़ते थे। तब उन्होंने अपने स्कूल में इसी आंदोलन का नेतृत्व किया। ब्रिटिश शासन ने कह दिया था—जहाँ वंदेमातरम् बोला जायेगा, वहाँ गोली चलेगी। वंदेमातरम् बोलना अपराध है। भारतवासियों ने कहा—हम भारतमाता की जय बोलेंगे ही बोलेंगे। हमें अपनी माँ की जय बोलने से कोई रोक नहीं सकता है। इसलिये जिधर वंदेमातरम् की टोलियाँ बोलती वंदेमातरम् उधर तड़-तड़-तड़ करके गोलियाँ चलती थी और लोगों की लाशें गिरती। कोई जख्मी होता तो उधर से दूसरी टोली आती और बोलती—वंदेमातरम्।

स्कूल के प्यारे बच्चो! वह युग था जब स्कूली बच्चों ने वंदेमातरम् के आन्दोलन को जगा दिया था और वंदेमातरम् से सारा आकाश गुंजायमान हो गया था। निर्भीक बच्चे भारत के और आज की आजादी उन्हीं की देन है। **वंदेमातरम् गाकर बलिदान होने वाला खुदीराम बोस, गीता को छाती पर रखकर वंदेमातरम् गाते-गाते प्राण दे रहा है।** यह उन लोगों की देन है। आज स्कूलों में जाकर पूछते हैं बच्चों को वंदेमातरम् याद है? नहीं जी, ये तो कराया नहीं जाता। उनकी पहली पीढ़ी के बच्चों ने वंदेमातरम् के लिये प्राण दिये और आज का विद्यार्थी वंदेमातरम् बोलने का कष्ट नहीं कर सकता। वंदेमातरम् की चार पंक्तियाँ याद करने की उसके पास फुरसत नहीं है। इसलिये हमें संभलने की जरूरत है। उस वंदेमातरम् आंदोलन में डॉ. हेडगेवार ने ऐसी योजना की। एक मुसलमान स्कूल इंस्पेक्टर था। स्कूल में आने वाला था। स्कूल में एक बहुत बड़ा परिपत्र आया हुआ था। किसी भी विद्यालय में वंदेमातरम् गाने की अनुमति नहीं है। गाने वालों को कठोर दण्ड

मिलेगा। जिस विद्यालय में गाया जायेगा वहाँ के हेडमास्टर, प्राचार्य आदि को दण्ड मिलेगा। तो केशव बलिराम हेडगेवार ने निश्चय किया कि जिस भी कक्षा में वह जायेगा सब लोग वंदेमातरम् गायेंगे। तो सब कक्षाओं में बोर्ड पर लिखा हुआ था वंदेमातरम्। और वह कक्षा में गया, सब लोग खड़े हो गये और कहा, वंदेमातरम्। वह बड़ा हैरान। हमने कल ही तो एक सर्कुलर भेजा है कि यह गाना अपराध है। गाने वालों को दण्ड मिलेगा। वह झुंझलाकर दूसरी कक्षा में गया। वहाँ भी सब खड़े होकर बोले, वंदेमातरम्। तीसरी कक्षा में, जहाँ जाये सुनाई दे—वंदेमातरम्। वह बड़ा परेशान हुआ। उसने तुरंत रिपोर्ट की। इस स्कूल में बहुत भयानक काम हो रहा है। वंदेमातरम् हो रहा है। विद्रोही लोग यहाँ भरे हुए हैं। स्कूल के हेडमास्टर पर बहुत नाराज हुआ। हेडमास्टर विद्यार्थियों पर नाराज हुआ। विद्यालय बंद कर दिया गया। कोई नाम न बतावे केशव का, अंत में बहुत मुश्किल से उनका नाम पता लगा तो बाद में उनको स्कूल से निकाल दिया गया। निकल गये, कोई चिंता नहीं की। यवतमाल में जो पहले बिहार के गवर्नर रह चुके थे उनका यवतमाल में एक राष्ट्रीय विद्यालय था। वहाँ भर्ती किये गये। तो वहाँ गये। वे चाचा के साथ सुबह-सुबह सैर करने को जा रहे थे। डिप्टी कमिश्नर सामने से आ रहा था। डिप्टी कमिश्नर आराम से टहलते-टहलते आ रहा था। वहाँ नियम यह था कि अंग्रेज अफसर कोई सामने से आये तो उसके लिये रास्ता छोड़ देते थे, रोड उसके लिये छोड़ देते, रोड के एक किनारे खड़े होकर उसको प्रणाम करते थे। चाचा ने देखा, अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर आ रहा है तो सड़क से हट जाना चाहिये। पर क्यों? भारत की सड़क है, भारत के हम पुत्र हैं। अंग्रेज तो विदेशी है इसको हम प्रणाम करें? ये तो भारत का अन्न-जल खा रहा है, ये हमको प्रणाम करे। हम क्यों इसको प्रणाम करें? चाचा बड़े हैरान हुए। वही स्थिति हुई जब अंग्रेज अफसर सामने आ गया, तो केशव खूब अच्छी तरह से अकड़कर उसके सामने से जाने लगा। उसको लगा, बड़ा गुस्ताख लड़का है। उसने अपने एक कर्मचारी को कहा, इस बच्चे को बुलाओ। बुलाया। ये कौन साहब हैं? केशव ने कहा, मुझे जानने की जरूरत क्या है? यहाँ के डिप्टी कमिश्नर साहब हैं। होते होंगे। यहाँ की मर्यादा यह है कि लोग सड़क छोड़कर हट जाते हैं, प्रणाम करते हैं। उन्होंने कहा, नहीं! ये कोई मर्यादा नहीं है। ये देश मेरा है। मैं अपने देश में चल रहा हूँ। मैं एक विदेशी को प्रणाम क्यों करूं? चाचा ने कहा, दूसरे लोगों ने कहा, ऐसा नहीं करते। नहीं, केशव ने कहा—'केशव किसी को भीति नमस्कार नहीं करता। भय से नमस्कार नहीं किया जायेगा। कुछ लोग भय से नमस्कार करते हैं, डर से नमस्कार करते हैं। भय का नमस्कार, नमस्कार नहीं है। कई लोग रीति नमस्कार करते हैं। रीति बनी हुई है। किसी ने कहा, राम-रामजी। राम-राम। ये वास्तव में नमस्कार नहीं है। कोई छोटा-बड़ा आदमी आ रहा है उसको कहा, प्रणाम। प्रणाम।

यह रीति नमस्कार है। रीति निभाने के लिये नमस्कार करते हैं। कोई करते हैं नीति नमस्कार। अच्छा देखो। काम निकालना है न? तुम यहाँ ठहरो। मैं जाता हूँ। और, अफसर के पास गया और कसकर सैल्यूट मारा। ओ साहब! क्या कहें? आपके दर्शन नहीं होते हैं। हम तो आपके लिये तरसते रहते हैं। आप कभी-कभी दर्शन दिया करें। खूब प्रशंसा की, उसकी प्रशंसा के पुल-बांधे। उसको प्रणाम आदि किया, आवश्यकता हुई तो उसके पांव छू लिये। काम निकालने के बाद, उनके दस्तखत चाहिये उनके दस्तखत करा लिये और बाहर आकर कहा—देखा, हमने कैसे इसको गधा बनाया। जिसको प्रणाम किया उसको गधा बनाया। यह नीति का, कूटनीति का नमस्कार हुआ। यह नीति नमस्कार है। वास्तविक नमस्कार है—प्रीति नमस्कार। जिससे हमारा प्रेम है उसको नमस्कार करेंगे। भय से नमस्कार नहीं करेंगे। केवल रीति निभाने के लिये नमस्कार नहीं करेंगे, केवल नीति नमस्कार नहीं करेंगे। हम केवल प्रीति-नमस्कार करेंगे, और प्रीति नमस्कार होगा हमारा मातृभूमि के प्रति। नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि, हे सदा वत्सला मातृभूमि, तुम्हें नमस्कार। मातृभूमि को नमस्कार। ऐसे अलौकिक महापुरुष की जीवन गाथा गाते-गाते रात्रि से प्रभात हो जायेगी। इसलिये मैं कहाँ तक गाऊँ? जब कलकत्ता गये। वहाँ क्रान्तिकारियों का संग हुआ। और क्रान्तिकारियों के साथ रहकर अरविन्दजी के संपर्क में आये। भारतमाता की उपासना का व्रत उन्होंने लिया। अनुशीलन समिति में रहे। वहाँ से लौटकर फिर नागपुर आये तो फिर क्रान्तिकारियों का एक Golden Triangle था दिल्ली-कलकत्ता-मुंबई। इस Golden Triangle में क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई करने में, हथियार सप्लाई करने में भी भाग लेते रहे। पंजाब में भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव इत्यादि इनके संपर्क में आते थे। राजगुरु तो खुद नागपुर का स्वयंसेवक था। वहाँ बम फेंकने के बाद जब लौटकर आया राजगुरु, तो डॉ. साहब ने भैयाजी दाणी की Firm में रखवाया, डॉ. साहब ने उससे कहा—देखो, पूना मत जाना। पूना जाओगे तो संकट आ जायेगा। एक बार गलती से राजगुरु पूना चला गया, वह वहाँ पकड़ा गया और उसको बाद में फांसी हुई। भगतसिंह भी इनके संपर्क में आता था। डॉ. साहब क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई का काम करते थे। इसके लिये परीक्षण किया। लोगों को जंगल में ले जाते थे और अनेक प्रकार से टेस्ट लेते थे, परीक्षा लेते थे। ऐसे लोग उन्होंने खोजे जो नौजवान औरत का रूप धारण कर सके, औरत के वस्त्र पहन सके। जिसकी मूंछ-दाढ़ी नहीं आयी हो। आयी हो तो उसकी सफाई करके और वह कंचुकी पहनकर के अपनी छाती में दो बम रखकर यानी स्तनों की जगह बम रखकर के ऊपर कंचुकी पहनकर, ऊपर साड़ी पहनकर Travel करे और वह क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई करे। ऐसे नौजवान खोजे जो कलकत्ता से लेकर नागपुर तक, नागपुर से मुंबई तक, मुंबई से पंजाब तक, पंजाब से पूना, नागपुर तक

इस Triangle में घूमते थे। ये अद्‌भुत कार्य करते रहे। एक बार तो नागपुर के अंदर पूरी ट्रेन के ऊपर डाका डालने की एक योजना बनायी गयी थी। प्रातःकाल पुलिस की वर्दियाँ बनाई गई। चपरासी की वर्दियाँ बनाई गई, कुलियों की वर्दियाँ बनाई गई। कई-कई संघ के अधिकारियों को कुली बनाया गया। वे कुली बने। वे स्पेशल कुली बन गये, स्पेशल पुलिस अफसर बन गये, तांगा लेकर गये। देखो, हमारी गाड़ी आ रही है। अरे ओ कुली! देखो, यह बक्सा उठाओ। सब पुलिस अफसर बने हुए, फीते आदि लगाये हुए, बक्से को उठाकर तांगे पर चढ़ा दिया, तांगे से ले भी गये और सरकार खोजती रह गयी। डॉ. साहब की एक भी योजना सरकार कभी नहीं पकड़ सकी। ऐसे कुशल कार्यकर्ता थे। इतने बड़े क्रान्तिकारी। उनकी एक योजना को भी सरकार विफल नहीं कर सकी। यह उनकी महानता थी।

ये सारे अनुभव लेने के बाद वे कांग्रेस में गये, मालवीयजी के साथ रहे, गाँधीजी को निकट से देखा, अरविन्दजी के साथ रहे, तिलक के भक्त रहे, सावरकरजी को कई बार शाखाओं में बुलाया। बहुत ही अद्‌भुत कार्य करने के बाद उन्होंने सन् 1925 के बाद सारे अनुभवों के बाद निश्चय किया—देखिये, ये सारे बाकी सब काम जो हैं, ये केवल वृक्षों के पत्तों को सींचने वाले काम हैं। राष्ट्र का वास्तविक निर्माण तब होगा जब राष्ट्र को शुद्ध राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा देंगे। उस राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा के लिये नवयुवकों का, किशोरों का, तरुणों का और प्रौढ़ों का दैनिक शाखा में आकर कार्यक्रमों में भाग लेना और प्रतिदिन हृदय पर हाथ रखकर मातृभूमि की वंदना करना। पतत्वेष कायो नमस्ते-नमस्ते हे मातृभूमि! तेरे लिये मेरा शरीर बलिदान हो जाय। मैं हृदय पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा करता हूँ। ये संस्कार जब प्रतिदिन मिलेगा, तब राष्ट्र जाग सकेगा। इस प्रकार म्रियमाण राष्ट्र को, सोये हुए राष्ट्र को, 1300 वर्ष की मार खाये हुए राष्ट्र को, पुनः जीवमान करने, जीवन्त करने, प्राणवंत करने, उसको अपने पांव पर खड़ा करने, उसको संगठन का मंत्र देने और भविष्यत् की उज्ज्वल आशा देने का महान् कार्य इस दधीचि ने किया जिसने अपनी अस्थियों को राष्ट्र के लिये बलिदान कर दिया। अपना सर्वस्व होम कर दिया, राष्ट्र के लिये। मैं मरूं पर मेरा राष्ट्र जी जाय। इसलिये संघ उनका सबसे बड़ा स्मारक है। संघ उनकी सबसे बड़ी देन है। संघ के द्वारा जो राष्ट्रीय चरित्र संपन्न नवयुवक हैं वही देश की और भविष्यत् की सबसे बड़ी आशा हैं। तो आज इस पुनीत पर्व पर मालव गणाधिपति वीर विक्रमादित्य का पावन स्मरण करते हैं, उसके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं तो आधुनिक काल में पुनः भारत के विगत वैभव को, पुनः भारत के विगत पराक्रम को, विगत पुरुषार्थ को पुनः जगाने का अभिनव कृत्य करने वाले नये विक्रमादित्य, विक्रम संवत् पर आने वाले डॉ. हेडगेवार को भी अनंत नमन समर्पित करते हैं। आज का यह पुनीत दिन, जिसको दक्षिण भारत के लोग युगादि कहते हैं, युग का आदि

है। जिस दिन अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें घटी हैं और अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जो प्रारम्भिक दिवस है, ऐसे इस वर्ष के प्रथम प्रभात पर और इस सृष्टि के प्रथम प्रभात पर और इस विजय के पर्व पर और महान् ऐतिहासिक उद्वेलन के ऐतिहासिक जागरण के इस पर्व पर हम यह संकल्प करें कि हम केवल बिन्दु का जीवन नहीं जीयेंगे, हम सिन्धु का जीवन जीयेंगे। जो गंगोत्री से गंगाजल चलता है वह एक बिन्दु है। वह बिन्दु जानता है कि पचास मील की गति से चलते हुए चालीस घण्टे के बाद मैं दो हजार मील की यात्रा करके गंगासागर में मिल जाऊंगा। गंगोत्री से चलने वाला जलबिन्दु चालीस घण्टे के बाद गंगासागर में, विराट् में मिल जाने वाला है। तो दो दिन की जिंदगी लेकर आता है बिन्दु, उसके बाद उसको विराट् में मिल जाना है। यदि वह बिन्दु कहे कि मैं तो दो दिन के लिये जीऊंगा। मैं धारा में क्यों बहूँ? अलग हो जाऊं। अरे! अलग होकर देख लो। बिन्दु तू सूख जायेगा, बिन्दु तू मर जायेगा। बिन्दु तेरा अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। अरे बिन्दु! तू धारा में मिल जा, दो दिन जिंदगी है तो क्या है? हर हिन्दू जो आया है उसको एक दिन मरना है पर हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हिन्दू तू बिन्दु का जीवन छोड़कर के सिन्धु का जीवन जी, धारा को अमर बना जा। अमर गंगा सदा के लिये बहती रहेगी। बिन्दु रहे न रहे कौन-सा अंतर पड़ता है, लेकिन बिन्दु को यह समाधान होगा कि मैंने धारा में जीवन दिया है। इसलिये धारा को अमर बना दिया है। मैं अपने आपको धारा में समर्पित करके अपने जीवन को धन्य करने जा रहा हूँ। इस विश्वास के साथ हम जीयें कि हमारा जीवन धारा के लिये ही होगा, धारा को अमर बनाने के लिये होगा। अलग से सूख जाने वाले बिन्दु का हमारा जीवन नहीं होगा। यही परम पूज्य डॉ. साहब का, हमारे लिये आज के परिप्रेक्ष्य में सबसे बड़ा संदेश है।

‘और कैसा है यह देश! जिस किसी के भी पैर इस पावन धरती पर पड़ते हैं वही, चाहे वह विदेशी हो, चाहे इसी धरती का पुत्र, यदि उसकी आत्मा जड़ पशुत्व की कोटि तक पतित नहीं हो गई तो, अपने आप को पृथ्वी के उन सर्वोत्कृष्ट और पावनतम पुत्रों के जीवन्त विचारों से घिरा हुआ अनुभव करता है, जो शताब्दियों से पशुत्व को देवत्व तक पहुँचाने के लिये श्रम करते रहे हैं और जिनके प्रादुर्भाव की खोज करने में इतिहास असमर्थ है।’

—स्वामी विवेकानन्द

अनन्य राष्ट्रभक्ति के दिव्य अवतार श्रीगुरुजी

आज भारत के क्षितिज से अखण्ड, अनवरत, निष्काम राष्ट्रभक्ति के सजीव अवतार का तिरोधान हो गया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक, अद्वितीय राष्ट्र-सेवा-व्रती पूज्य श्रीगुरुजी (श्री माधव सदाशिव गोलवलकरजी) ने जीवन लीला संवरण कर परम शान्तिधाम को प्रयाण किया है। जहाँ देवलोक में उन जैसी दिव्य विभूति के प्रवेश पर गंधर्वों का स्वागत गान गूंज रहा होगा, वहाँ भारत के कोटि-कोटि नर-नारी उस महान् अलौकिक विभूति के स्वर्गवास पर अपनी अश्रु-मुक्ता मालाओं से उन्हें अपनी श्रद्धा-भक्ति की पुष्पांजलि चढ़ा रहे हैं।

वन्देमातरम् का वरदान

सन् 1905-06 में देश में स्वदेशी आन्दोलन का ज्वार उठा था। श्री अरविन्द, लोकमान्य तिलक तथा लाला लाजपत राय ने देश भर में वन्देमातरम् मंत्र को गुंजा दिया था। बंगाल के युवकों ने अपना हृदय चीर कर के पाप के प्रायश्चित्त के रूप में वन्दे मातरम् गाते हुए लाठी, गोली तथा फांसी तक का स्वागत किया था। विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1902 में महासमाधि ली थी, वेदान्त विग्रह स्वामी रामतीर्थ ने सन् 1905 में गंगाजी में जल समाधि ली थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघ चालक डा. केशव बलिराम हेडगेवार ने नागपुर के विद्यार्थी जीवन में वन्देमातरम् आन्दोलन में खुलकर भाग लिया था, जिसके कारण उन्हें घर वालों से ताड़ना हुई तथा स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। किन्तु प्रत्येक यातना एवं ताड़ना की मार में उनके मुख से गूंजता 'वन्दे मातरम्', पूज्य श्री गोलवलकरजी का 1906 में जन्म इन्हीं महान् विभूतियों के पुञ्जीभूत प्रभाव तथा वन्दे मातरम् की अमर प्रेरणा के दिव्य वरदान के रूप में ही हुआ था।

मातृभूमि के दिव्य आध्यात्मिक स्वरूप के द्रष्टा

योगीराज श्री अरविन्द ने लिखा है, 'स्वाधीनता वह सुफल है जो हम बलिदान से पाते हैं तथा मातृभूमि वह देवी है जिसे हम समर्पित करते हैं। यज्ञाग्नि की उठती हुई सप्त जिह्वाओं में हमें वह सबकुछ समर्पित करना है जो कुछ हम हैं

और जो कुछ हमारा है। यज्ञाग्नि की लपटों में हमें अपना रक्त, जीवन तथा स्वजनों का सुख-सौख्य सभी समर्पित कर देना है।' पूज्य श्रीगुरुजी ने भी मातृभक्ति को आध्यात्मिक भित्ति पर अधिष्ठित करते हुए कहा है, 'हमारे लिये इस भूमि से पवित्रतर और कुछ नहीं हो सकता। इस भूमि की धूलि का एक-एक कण, जड़ और चेतन प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक काष्ठ और प्रस्तर, प्रत्येक वृक्ष और नदी हमारे लिए पवित्र है।' यह भूमि जिसका महायोगी अरविन्द ने विश्व की दिव्य जननी के जीवन्त आविष्कीकरण के रूप में साक्षात्कार किया—जगन्माता! आदिशक्ति! महामाया! महादुर्गा! जो मूर्त रूप साकार होकर हमें दर्शन-पूजन-वंदन का अवसर प्रदान कर रही है।

यह भूमि जिसकी स्तुति हमारे दार्शनिक कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'देवि भुवन मनोमोहिनी....नील सिन्धु जलधौत चरणतल' कह कर की है।

यह भूमि जिसका वंदन स्वतंत्रता के उद्घोषक कवि बंकिमचन्द्र ने अपने अमर गीत वन्दे मातरम् में किया है, जिसने सहस्रों युवा हृदयों को स्फूर्त कर स्वतंत्रता के हेतु आनन्द पूर्वक फांसी के तख्ते पर चढ़ने की प्रेरणा दी—'त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी—वह भूमि जो अनन्त काल से हमारी प्यारी पावन भारतमाता है जिसका नाम मात्र हमारे हृदयों को शुद्ध सात्विक भक्ति की लहरों में आपूर्ण कर देता है। अहो, यही तो हमारी सब की माँ है, हमारी तेजस्विनी मातृभूमि।'

जन्मजात योगी

इस दिव्य बालक माधवराव का जन्म सन् 1906 में नागपुर के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। बालक मधु की स्मृति एवं धारणाशक्ति इतनी अलौकिक थी कि एक बार किसी विषय को सुन लेने के पश्चात् वह उसे जीवन भर नहीं भूलता था। एक बार हिस्लाप कालेज के प्राचार्य गार्डिनर को बहुत अचम्भा हुआ जब बालक माधवराव ने प्राचार्य के व्याख्यान में प्रस्तुत एक बाइबिल की सूक्ति को सुधार कर बताया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए एक बार परीक्षा से तुरंत पूर्व उन्हें एक बिच्छू ने डस लिया। वे पांव के दंश वाले भाग को चाकू से छीलकर पुनः स्वाध्याय में तन्मय हो गये। पूछने पर उन्होंने कहा, 'बिच्छू ने मेरे पांव को काटा है, मेरे मस्तिष्क को नहीं। अतः पढ़ाई में बाधा का कोई प्रश्न ही नहीं।' धारणाशक्ति में तो वे अद्वितीय ही थे। सम्भवतः संसार का कोई भी अन्य पुरुष इतने अधिक (लाखों) लोगों को नाम से नहीं जानता होगा जितना गुरुजी जानते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनके आदर्श प्राध्यापक रूप पर मुग्ध होकर ही सारा विश्वविद्यालय तथा बाद में सारा राष्ट्र उन्हें पूज्य गुरुजी के रूप में संबोधन करने लगा।

निर्भीक स्वयंसेवी

एक बार श्री माधवरावजी मद्रास में मत्स्य विज्ञानशाला में शोध हेतु गये हुए थे। वहाँ एक दिन हैदराबाद के निजाम को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया था। उक्त विज्ञानशाला में शुल्क देकर प्रवेश की परम्परा थी। निजाम के आने पर जब सभी अधिकारी उनके स्वागत के लिये चिन्तित हो रहे थे तब माधवराव ने आगे बढ़कर उनसे प्रवेश पत्र पूछा। इस पर सभी के स्तंभित हो जाने पर गोलवलकरजी ने बताया कि 'नियम में सब समान हैं। टिकट में रियायत किसी निर्धन व्यक्ति के लिये हो सकती है किन्तु संसार के सबसे धनी व्यक्ति के लिए नहीं।'

अभिनव नरेन्द्र

अपनी आध्यात्मिक साधना के लिये श्री गोलवलकरजी रामकृष्ण आश्रम सरगाच्छी (बंगाल) में पूज्य स्वामी अखण्डानंदजी के चरणों में पहुँचे। वहीं इन्होंने अपनी ब्रह्मचर्य साधना में केश एवं श्मश्रु वर्धन प्रारम्भ किया। बाद में माता-पिता के बारम्बार आग्रह के उपरान्त भी 9 सन्तानों में से एकमात्र अकेले जीवित रहने वाले श्री माधवराव ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का आजीवन पालन किया। वंशवृद्धि के लिए माता-पिता के अश्रुपूर्ण आग्रह के उत्तर में वे कहते, 'केवल मेरा वंश ही नहीं किन्तु अनेक सहस्र वंशों को अपनी वृद्धि त्यागनी पड़ेगी ताकि भावी पीढ़ियाँ अधिक समृद्ध भारत में जन्म ले सकें।' पूज्य गुरुजी के सरगाच्छी आश्रम के पुराने साथी अमिताभ महाराज कहते थे, 'श्री गोलवलकर अभिनव नरेन्द्रनाथ हैं—अभिनव विवेकानंद।'

इतिहास दुर्लभ लोकसंग्रही

विश्व में आज तक जितने महापुरुष हुए हैं उनमें से इतना बड़ा लोकसंग्रही कदाचित ही कोई अन्य हुआ हो। विगत 33 वर्षों से निरन्तर देश के कोने-कोने में प्रवास कर देश की सोई हुई आत्मा को जगाते हुए जो इतना विशाल तेजस्वी संगठन उन्होंने निर्माण किया है वह इतिहास का एक अनूठा चमत्कार ही है।

निष्काम यज्ञमय जीवन

पूज्य गुरुजी का जीवन एक दिव्य यज्ञ स्वरूप जीवन था। अपने लिए कभी भी तनिक स्वार्थ एवं पदलिप्सा की चाह न रखते हुए उन्होंने सर्वस्व राष्ट्र माता के चरणों में पूजा स्वरूप समर्पित कर दिया। ऐसी अनन्य राष्ट्रभक्ति का आदर्श युग-युग तक मानवता को प्रेरित करता रहेगा।

गुरुजी की भाषा मधुर, एक-एक शब्द नपा-तुला और सारगर्भित होता था जैसे कोई वेदवाक्य हो। स्व. श्री टी.आर. वैंकटराम शास्त्रीजी उस समय दक्षिण

भारत में लिब्रल पार्टी के उच्च नेता थे, उनके मन में R.S.S. के विषय में भ्रान्तियाँ थीं। वे इसे एक जातिवादी संगठन मानते थे। जब वे श्री गोलवलकर से मिले तो उनके विचार बिल्कुल बदल गये। उन्होंने लिखा, 'मैं यहाँ गुरुजी से भेंट करने आया था किन्तु उनके शक्तिशाली वार्तालाप ने मुझे पूर्णतया झकझोर कर रख दिया। उनसे भेंट करने के बाद मेरे विचार बहुत सुदृढ़ और परिपक्व हुए हैं, मुझे अपने पहले के विचारों और मान्यताओं में परिवर्तन लाना होगा, आप सब उनके विचारों को शान्त मन से सुनें और उस पर मनन करें।

गुरुजी ने विद्यार्थियों को सम्बोधन करते हुए कहा, हमारे विद्यार्थी को बार-बार कहा जाता है कि वे राष्ट्र के स्तम्भ हैं। यह बात सुनते-सुनते कुछ युवाओं के मन दम्भ से फूल जाते हैं जो उचित नहीं है। हमें स्तम्भ नहीं नींव के पत्थर बनना है। यदि राष्ट्र के भवन की नींव सुदृढ़ हो तो राष्ट्र मजबूत होगा। नींव का पत्थर चाहे देखने में सुन्दर आकृति का न हो, किन्तु सुदृढ़ होना चाहिये। इस पत्थर में कोई दम्भ नहीं होता। यदि वह कमजोर हो, या हिलता हो तो पूरा भवन डगमगा सकता है जो असुरक्षित होगा। हमें शांत होकर अपनी सेवा देनी है, कोई दिखावा नहीं। इस प्रकार हम राष्ट्र की सच्ची सेवा कर पायेंगे। निष्काम एवं निर्लिप्त भाव से सेवा करनी है, केवल औरों को भाषण या ज्ञान बांटने से नहीं।

राष्ट्रवाद—राष्ट्रवाद एक विलक्षण अनुभूति है जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में प्रेम, सद्भावना और भाईचारे की भावना बढ़ाती है। यह कर्तव्यपरायणता, बलिदान, सबका कल्याण एवं एकनिष्ठा को दृढ़ करती है। हमें एक सबल, सक्षम और विकसित राष्ट्र की आवश्यकता है, जहाँ सामूहिक आदर्श, आकांक्षाएं, चिन्तन एवं संवेदनशीलता हो। ऐसे राष्ट्र का प्रबुद्ध नागरिक हिन्दू है। विघटनकारी भिन्न-भिन्न आदर्शों, ऐतिहासिक मतभेदों वाले नागरिक कैसे एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं?

राष्ट्रीय चरित्र की महत्ता के बारे में गोलवलकरजी कहते थे, इतिहास पर दृष्टि डालने से देख सकते हैं कि ऊँचे राष्ट्रचरित्र वाले देश प्रगति के शिखर तक पहुँच जाते हैं, जहाँ राष्ट्रीय चरित्र गिरते हैं वह राष्ट्र पतन को प्राप्त होता है। राजनीतिक समस्यायें तो आती-जाती रहती हैं—उनका कुछ अस्थाई हल मिल जाता है, किन्तु राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कार्य निरन्तर सुन्दर ढंग से चलना चाहिये। जब तक राष्ट्र जिन्दा है, हम जीवित हैं। यह महान् कार्य सदा चलता रहना चाहिये।

गुरुजी को अपनी निष्काम सेवा के लिये सब दिशाओं से सम्मान मिला जो शायद किसी राजा को भी नसीब न हो। इतना मान-सम्मान मिलते हुए भी वे सदैव अहंकार या दंभ से दूर रहे। वे जल में कमल की भांति निर्लिप्त रहते थे।

सच्चे कर्मयोगी गुरुजी ने कहा था, मैं अत्यधिक मान-सम्मान के स्थान पर कटु आलोचना को शांत कर बुझे हुए विष की तरह पी सकता हूँ।

अंतिम मार्मिक भेंट

पूज्य गुरुजी 10 मार्च 1963 को रांची जिला के प्रवास पर पधारे थे तो उनका स्वास्थ्य चिन्ताजनक था। वे प्रखर ओजस्वी वक्ता इस बार बैठकर थोड़ा समय बोले। अचानक ध्वनिवर्धक एवं विद्युत् की खराबी से उनकी वाणी और अधिक क्षीण प्रतीत हो रही थी। उनके प्रवचनों में जो अमृत बरसता था तथा प्रेरणा का महासागर उमड़ता था, इस बार हम सब उससे कुछ वंचित रह गये थे। रेलवे स्टेशन पर प्रथम श्रेणी के विश्रामागार में वे एक थके हुए सिंह के समान आराम कुर्सी में लेटे थे। चरण स्पर्श कर मैंने संस्कृति विहार द्वारा प्रकाशित विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार विषयक कुछ सुन्दर चित्र, उन्हें भेंट किये। उन्होंने आशीर्वाद दिया। प्लेटफार्म से गाड़ी के डिब्बे तक ले जाने में मैं उन्हें दायीं भुजा से थामे हुए तथा प्रो. अगाशेजी बायीं भुजा से। डिब्बे में बैठकर वे बोले—'अब शरीर काम का नहीं रहा। प्रभु जब चाहें ले लेवें। हम तो तैयार बैठे हैं।' इस पर सभी के नेत्र सजल हो गये। कुछ दिनोपरान्त मेरे पूज्य पिताजी का स्वर्गवास होने पर उन्होंने संवेदना एवं आशीष का सुन्दर पत्र नागपुर से भेजा। उनकी उस पत्र प्रेषित आशीष से हम सहन शक्ति पाकर पुनः स्वस्थचित्त हुए ही थे कि वे स्वयं अमरों के लोक के लिए सिधार गये। पूज्य पिताजी के स्वर्गवास पर उन्होंने सांत्वना दी थी। आज उनके दिव्य देहारोहण पर जगत्पिता जगदीश्वर के सिवा हमें कौन सांत्वना दे सकता है? उनकी दिव्य आत्मा हमें सदा सर्वदा राष्ट्र सेवा के महाव्रत में अमर प्रेरणा देती रहे, यही प्रभु से अभ्यर्थना है।

जो हितैषियों के सम्मुख अपनी भूल स्वीकार करता है, वह महान् बनता है। उसकी महत्ता उसे सम्पन्न तथा प्रसन्न रखती है तथा अन्यों को महान् बनने के लिए प्रेरित करती है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

एकनाथ रानाडे

विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी के संस्थापक अध्यक्ष श्री एकनाथ रानाडे भारतीय इतिहास की विरल विभूतियों में से एक थे। उनके स्वर्गवास से भारतीय समाज को विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के अनुरूप ढालने वाला एक सर्वतोभावेन समर्पित समाजसेवी एवं जाति का दूरदर्शी भाग्य विधाता हमसे छिन गया।

एक बार स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा था कि 'यदि मेरे पास श्री एकनाथ रानाडे एवं श्री दीनदयाल उपाध्याय जैसे दो व्यक्ति हो जाय तो मैं देश का चित्र ही बदल कर दिखा दूं।' उन्हें इस बात पर दुःख होता था कि ऐसे महान् समर्पित महापुरुषों का मूल्य केवल राजनीतिक पूर्वाग्रह, राष्ट्रीय अदूरदर्शिता तथा विचारधारा के तनिक मतभेद के कारण हमारा कांग्रेस का प्रशासन पहचान नहीं रहा है। अपने भाव की व्याख्या में उन्होंने बताया था कि सारे काश्मीर आन्दोलन का संचालन करने वाला श्री दीनदयाल उपाध्याय काश्मीर में एक विधान, एक निशान एवं एक प्रधान के आदर्शों को लेकर सत्याग्रह का संचालन कर रहा था। प्रतिदिन समय पर सत्याग्रहियों का जत्था नारा लगाते हुए चांदनी चौक, दिल्ली में उपस्थित हो जाता था किन्तु भारत सरकार की खुफिया पुलिस हजार प्रयास करने पर भी संचालनकर्ता दीनदयाल को पकड़ नहीं सकती थी, जबकि वे वहीं पर फटी हुई मैली धोती पहन कर एक खंभे के सहारे खड़े मूंगफली खाते हुए सत्याग्रह का तमाशा देखते रहते थे और सी.आई.डी. वाले इसी भ्रान्ति में थे कि वहाँ वह भी वेश बदला हुआ सी.आई.डी. का ही व्यक्ति है तथा अपना ही काम कर रहा है।

श्री एकनाथ रानाडे ने जिस प्रकार भीषण कठिनाइयों को अकेले ही झेल कर विवेकानन्द केन्द्र एवं शिला स्मारक की रचना का चमत्कार कर दिखाया वह भी भारतीय इतिहास में अतुलनीय ही है। इतना बड़ा ध्येयनिष्ठ, निरन्तर कर्मलीन तथा अन्ततोगत्वा सफलता को पाकर भी निरभिमान रहने वाला निरहंकारी कर्मयोगी आज के युग में दुर्लभ है।

श्री एकनाथजी रानाडे प्रखर मेधाशक्ति के व्यक्ति थे। दर्शन में एम.ए. करके सीधे समाज सेवा के कार्य में लग गये। वे शैशवावस्था से ही संघ के स्वयंसेवक

थे तथा संघ संस्थापक डा. केशव बलिराम हेडगवार के सजीव संस्पर्श में आये थे। देश-भक्ति की जो विद्युत् धारा उनको स्पर्श कर गई, उसी ने उनके भीतर से एक महापुरुष को आलोकित कर दिया। वे संघ के आजीवन समर्पित पूर्णकालिक प्रचारक बन गये। वे संघ की विचारधारा को बड़े मनोयोगपूर्वक दार्शनिक शैली में प्रस्तुत करने में बड़े सिद्धहस्त थे। वे केवल आराम कुर्सी पर बैठ कर दार्शनिक ऊहापोह करने वाले विचारक नहीं थे वरन् वे प्रत्यक्ष जीवन में दर्शन को वृत्ति में उतारने में भी परम कुशल थे। वे संगठन प्रविधि के महान् मर्मज्ञ थे। उनकी धारणाशक्ति इतनी विकसित थी कि वे प्रथम परिचय में ही सैकड़ों स्वयंसेवकों के नाम तुरंत दोहरा कर बता सकते थे तथा बैठक या गोष्ठी में वे प्रत्येक स्वयंसेवक को उसका नाम लेकर ही पुकारते थे जिससे सभी विस्मयविमुग्ध हो जाते थे। किसी विषय का प्रस्तुतीकरण करने में वे ऐसा बोलते थे मानो कोई महान् दार्शनिक गम्भीर चिन्तन के पश्चात् सिद्धान्त की व्याख्या कर रहा है। इसलिए श्री रानाडेजी का प्रत्येक शब्द एक मंत्र तुल्य मूल्यवान बन जाता था।

महान् त्याग

संघ के श्री गुरुजी पहले रामकृष्ण मिशन में ही आध्यात्मिक प्रशिक्षण हेतु गये थे। वहाँ वे स्वामी विवेकानन्द के गुरु भाई स्वामी अखण्डानंदजी से दीक्षित भी हुए थे। स्वामी अखण्डानंदजी प्रायः कहते थे कि माधवराव गोलवलकर अभिनव नरेन्द्र है। सन् 1963 में स्वामी विवेकानन्द शताब्दी वर्ष के अवसर पर स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों को साकार करने के लिए एक व्यापक चिरस्थाई समाज निर्माण का कार्य खड़ा करने की आवश्यकता थी ताकि हिन्दू समाज का आमूलाग्र कायाकल्प किया जा सके। एतदर्थ किसी तेजस्वी महापुरुष की आवश्यकता थी, जो इसी कार्य के लिए अनन्यभाव से लग जाय और इस असंभव कार्य को भी संभव करके दिखा सके। उस समय श्री एकनाथजी रानाडे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर कार्यवाह (राष्ट्रीय महामंत्री) थे। यदि वे उसी पद पर बने रहते तो संभवतः समय आने पर वे सर्वोच्च पद को भी अलंकृत कर सकते थे। किन्तु उन्होंने सब मोह एवं पदलिप्सा त्याग कर श्री गुरुजी की इच्छानुसार अपने आप को विवेकानन्द केन्द्र के अत्यन्त कठिन एवं जटिल कार्य के लिए झोंक दिया।

कन्याकुमारी में ईसाई उत्पात

विवेकानन्द शिला पर ईसाइयों ने ईसाई क्रॉस लगा कर एक विवाद खड़ा कर दिया था कि वह सन्त थामस की शिला है। श्री रानाडे ने कई वर्ष तक न्यायालय में केस लड़कर यह निर्णय प्राप्त किया कि वह विवेकानन्द शिला हिन्दू-तीर्थ है जहाँ स्वामीजी को पश्चिम दिग्विजय की प्रेरणा मिली। फिर भी ईसाइयों ने उत्पात जारी रखा और विवेकानन्द शताब्दी वर्ष में स्थापित विवेकानन्द स्मारक संगमरमर पट्टी

को हथौड़ों से चूर-चूर कर दिया। कई कार्यकर्ताओं पर घातक प्रहार हुए, दर्जनों स्वयंसेवक घायल हुए तथा दो-तीन की मृत्यु भी हुई। कन्याकुमारी ईसाई बहुल नगर होने के कारण ईसाई वहाँ हिन्दुओं का कोई महान् स्मारक बनने देना नहीं चाहते थे। किन्तु वीरव्रती रानाडे हिम्मत नहीं हारे। उन्होंने प्रशासन की सहायता लेकर ईसाई उपद्रवकारियों को वहाँ से निरस्त किया। फिर तमिलनाडु सरकार ने अपनी कई आपत्तियाँ खड़ी कर दीं। उन्होंने कहा कि धार्मिक न्यासबोर्ड की अनुमति के बिना वहाँ कोई स्मारक नहीं बन सकता। श्री रानाडे फिर भी हिम्मत नहीं हारे। वे बोर्ड के एक-एक सदस्य को मनाने के प्रयास में लगे रहे। जब धार्मिक न्यासबोर्ड के सदस्य माने तथा मंत्री भक्त वत्सल्य को भी मना लिया गया तब केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने आपत्ति खड़ी कर दी। शिक्षा मंत्री प्रो. हुमायूं कबीर ने कहा कि वहाँ विवेकानन्द शिला स्मारक बन जाने से उक्त शिलाओं का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट हो जावेगा। श्री रानाडे फिर भी निरुत्साहित नहीं हुए। वे शिक्षामंत्री को भी स्मारक की भावी भव्य योजना से संतुष्ट करने में सफल हो गये।

रामकृष्ण मिशन को संतुष्ट करना

फिर रामकृष्ण मिशन ने आपत्ति कर दी कि स्वामी विवेकानन्द से संबंधित प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल पर स्मारक या मंदिर बनाने का एकाधिकार उन्हीं का है। श्री रानाडे ने 1963 में स्वामी विवेकानन्द के हिन्दू राष्ट्र के प्रति उद्बोधन की वाणी को सम्पादित कर 'उत्तिष्ठत जाग्रत' नाम का एक बड़ा प्रेरणादायी संकलन प्रकाशित करवाया। रामकृष्ण मिशन ने बिना उनकी अनुमति के विवेकानन्द वाणी का संकलन प्रकाशित करने पर भी कानूनी आपत्ति कर दी। श्री एकनाथजी तो सन्त एकनाथ के समान बड़े मधुरभाषी एवं नितान्त निष्काम समाजसेवी थे। उन्होंने स्वयं रामकृष्ण मिशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं अन्य अधिकारियों से स्वयं मिलकर इस महान् राष्ट्रीय कार्य में सहयोग के लिए उन्हें भी सन्तुष्ट कर लिया।

निधि संग्रह

श्री एकनाथजी ने विवेकानन्द शिला स्मारक हेतु धन संग्रह करने में पुनः महामना मालवीयजी की स्मृति जगा दी। इस स्मारक के लिए उन्होंने देश भर से 1 करोड़ 20 लाख रुपये धन संग्रह किया। द्वार-द्वार से देश के 25 लाख जनसाधारण से कम से कम 1 रुपया प्रतिव्यक्ति संग्रह किया गया। प्रत्येक राज्य सरकार से भी दान संग्रह किया गया तथा भारत का एक अलौकिक तीर्थस्थल विवेकानन्द शिला स्मारक के रूप में निर्मित हो गया। उसके उद्घाटन के समय राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने कहा—'आज जब हम पुनः भाग्य के चौराहे पर खड़े हैं तब विवेकानन्द का सन्देश हमारे लिए विशेष महत्त्व का है।'

श्री एकनाथ रानाडे ने कहा—'विवेकानन्द मंडपम् के जो शिखर आज आप स्मारक की परिपूर्ति पर देख रहे हैं वे हम तब भी देखा करते थे जब यह शिला खाली नंगी पड़ी थी तथा इस पर कुछ भी निर्माण नहीं हुआ था। हमारे उस समय के स्वप्न के शिखर आज वज्र साकार होकर एक अलौकिक भव्य भवन के रूप में सामने आ गये हैं।'

प्रधानमंत्री पुलकित

15 सितम्बर 1980 को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने शिला स्मारक का परिदर्शन कर अपनी सम्मति अंकित की 'कन्याकुमारी आकर यह दृश्य देखकर मेरा हृदय पुलकित हो गया है कि विवेकानन्द सन्देश में सहस्रों, लाखों के विश्वास ने किस प्रकार इस अद्वितीय स्मारक को संभव बना दिया है।

गृही-प्रचारकों की योजना स्वामी विवेकानंद के सेवा के सन्देश को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करेगी।'

हिमालय आदर्श कन्याकुमारी कृति

स्वामी रंगनाथानन्द ने कहा कि हिमालय ध्यान भावना का प्रतीक है और कन्याकुमारी उस आध्यात्मिक आदर्श को प्रत्यक्ष जीवन में क्रियान्वित करने का प्रतीक बन गया है।

जहाँ रामकृष्ण मिशन में संन्यासी प्रचारक निर्माण करने की योजना चलती है वहाँ विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी में बिना संन्यास ग्रहण किए ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी तेजस्वी तरुण प्रचारकों को प्रशिक्षित करने का महान् प्रकल्प प्रारम्भ किया गया है। अब तक सैकड़ों जीवनव्रती कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित कर अरुणाचल, असम, नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, अंडमान, कलकत्ता, चांडिल, जमशेदपुर, सिक्किम, दिल्ली, हिमाचल, अहमदाबाद, मुम्बई, मद्रास, नगरकोइल, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में शिक्षा, औषधि सेवा, योगासन शिविर आदि के सुन्दर प्रकल्प चलाए जा रहे हैं। श्री रानाडे कई बार रांची भी पधारे हैं।

संगठन तंत्र एवं समर्पण

'हिन्दू राष्ट्र का जीवन लक्ष्य' में श्री रानाडे लिखते हैं—'समर्पण की बलवती भावना के बिना हम अपने संगठन तंत्र का उपयोग भली प्रकार न कर सकेंगे। अतः संगठन तंत्र के ज्ञान के साथ ही हृदय में सम्पूर्ण समर्पण का भाव भी चाहिए।'

प्रकाशन

श्री रानाडे द्वारा संपादित ग्रन्थ एवं पत्रिकाएं—INDIA'S CONTRIBUTION TO WORLD THOUGHT & CULTURE,

(705 पृष्ठ) CHRISTIANITY IN INDIA, FREEDOM FIGHTER, DOWRY SYSTEM, DANCE IN INDIA, INDIA IN THE EYES OF FOREIGNERS, MOTHER INDIA'S CHILDREN ABROAD, RISING CALL TO HINDU NATION, उत्तिष्ठत्त जाग्रत, YUVA BHARATI, केन्द्र भारती, केन्द्र समाचार, KENDRA PATRIKA.

मानस की झांकी

श्री रानाडे की एक सम्पादकीय टिप्पणी है—'बाल मन ही नहीं, वयस्कों, प्रौढ़ों एवं वृद्धों के मन पर भी चित्रों एवं मूर्तियों का प्रभाव पड़ता है। जरा विचारिए तो सही कि आपके घरों में किनके चित्र शोभा पा रहे हैं? यदि सिनेमा के कलाकारों के चित्रों को आप लगाते हैं तो वैसे ही मार्ग की ओर आप और आपकी सन्तानें चलेंगी और उसी स्तर का चिन्तन भी चलेगा।....किसी व्यक्ति के मानस की झांकी देखनी हो तो उसके कक्ष की साज-सज्जा को देखकर आप प्रायः ठीक अनुमान पर ही पहुँचेंगे। महापुरुषों के प्रेरक चित्र, सुन्दर प्राकृतिक चित्र, सात्त्विक कलात्मक चित्र, धार्मिक श्रद्धा जगाने वाले मनोरम चित्र इत्यादि से अपना घर सजाना सत्संस्कार की दिशा में आवश्यक और उपयोगी पग है।'

37 वर्ष का पावन संपर्क

सन् 1945 में बिलासपुर संघ शिक्षावर्ग में मेरा उनसे प्रथम परिचय हुआ। तब वे वर्ग के बौद्धिक प्रमुख थे। 1961 में दिल्ली संघ शिक्षावर्ग में अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख थे। मेरे प्रति उनका स्नेह एवं आत्मीयता का व्यवहार अन्त तक बना रहा। उन्होंने एक जीवन व्रती श्री नागेन्द्र भट्ट को रामकृष्ण मिशन मोराहाबादी, रांची में रखा था। वहाँ उस प्रचारक को कुछ कठिनाई होने लगी। मा. एकनाथजी के आदेशानुसार हमने उसे संस्कृति विहार में रख लिया। सन् 1974 में श्री रानाडे रांची पधारे तथा संस्कृति विहार का सविस्तार परिदर्शन कर हार्दिक आशीर्वाद दिया। 1974 के अन्त में पुनः मुम्बई में अ.भा. विद्यार्थी परिषद के रजत जयन्ती सम्मेलन में उनसे भेंट हुई। 1975 में आपात स्थिति घोषित हो जाने पर उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि वे रांची पधार रहे हैं तथा वे मेरे निवास पर ही ठहरेंगे। किन्तु आपात स्थिति में मेरे शरीर के ही बन्दी बना लिए जाने के कारण श्री एकनाथजी को मूरी स्टेशन से ही लौट जाना पड़ा। 1966 में मैं अपनी माताजी के साथ कन्याकुमारी जाकर श्री एकनाथजी से मिला। 1979 में उन्होंने मुझे अरुणाचल प्रदेश में विवेकानन्द केन्द्र द्वारा संचालित 7 विद्यालयों के शिक्षक शिक्षण शिविर में व्याख्यानमाला हेतु आमंत्रित किया। 1980 में वे अस्वस्थ हुए। फरवरी एवं मार्च 1982 में मैं उनसे पुनः मिल कर आया। वे स्वास्थ्य लाभ करते-करते वैकुण्ठ लाभ कर गये।

सफलता का रहस्य

श्री रानाडेजी की सफलता का रहस्य था—

(क) हीन भावना का नितान्त अभाव

(ख) उत्साह एवं सतत प्रयत्न

(ग) मानवीय संबंधों के हित में, लोक संग्रह हेतु, प्रत्येक पत्र का अनिवार्य उत्तर।

जीवन मंत्र

श्री एकनाथ रानाडे का जीवन मंत्र जो वे जीवनव्रती कार्यकर्ताओं को दीक्षा मंत्र के रूप में देते थे, बड़ा मार्मिक है—

वयं सुपुत्रा अमृतस्य नूनं, तवैव कार्यार्थमिहोपजाताः।
निष्काम बुद्ध्याऽऽर्त विपन्न सेवा, विभो! तवाराधनमस्दीयम्॥

अर्थात्

हम अमृत सुपुत्र हैं निश्चय, जन्मे ईश्वर कार्य निमित्त।
स्वार्थ-मुक्त सेवा दुःखियों की, विभो! तेरा पूजन अर्चन॥

'.....जगत् में जो सर्वश्रेष्ठ एवं साहसी होते हैं उनके भाग्य में कष्ट ही लिखा होता है।.....इस जगत् में किसी न किसी को कष्ट उठाना ही पड़ेगा। मुझे आनन्द है कि प्रकृति के सम्मुख बलि के रूप में जिनको खड़ा किया गया है उनमें से मैं एक हूँ.....'

—स्वामी विवेकानन्द

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के महान् पक्षधर श्री छागला

श्री मुहम्मद करीम छागला के स्वर्गवास से भारत की राष्ट्रीय शक्तियों की एक अपूरणीय क्षति हुई है। वे मुसलमान होते हुए भी मुस्लिम कट्टरपंथी साम्प्रदायिकता से मुक्त ऐसे उदार एवं आदर्श राष्ट्रवादी महापुरुष थे कि उनका जीवन भारतीय मुसलमानों के लिए एक जीवित आदर्श के रूप में प्रस्तुत किये जाने योग्य है।

राष्ट्रधर्म बनाम व्यक्तिगत धर्म

उन्होंने राष्ट्रधर्म को व्यक्तिगत आस्था से सदा ऊँचा माना तथा अपनी व्यक्तिगत निष्ठा की रंगत से राष्ट्रीयता की ज्योति को कभी भी धूमिल या रंजित नहीं होने दिया। वे रहीम, रसखान, दारा शिकोह एवं नजीर की परम्परा के राष्ट्रवादी मुस्लिम थे जो इस्लामी मजहब को मानते हुए भी भारत की राष्ट्रीय संस्कृति को व्यक्तिगत मजहब से ऊँचा मानकर इसकी उचित प्रतिष्ठा करते थे।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा

वे बड़े साहस से यह सत्य घोषित करते थे कि संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है तथा यदि भारतीय मुसलमानों को भारतीय राष्ट्र के प्रति वफादार रहना है तो उन्हें भारत की मूल-संस्कृति के प्रति वफादार रहना होगा, न कि अरब की संस्कृति के प्रति।

हिन्दू निन्दकों को करारा तमाचा

जब पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने हिन्दुओं को घिनौनी गाली दी थी तब भी श्री छागला ने भुट्टों को करारा तमाचा लगाया था। उन्होंने भुट्टो को स्मरण कराया कि वह स्वयं हिन्दू की संतान होकर हिन्दू को गाली देने के बहाने अपने समस्त पूर्वजों को गाली दे रहा है।

99 प्रतिशत मुसलमानों में हिन्दू रक्त

उन्होंने बड़ी ऐतिहासिक घोषणा की कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश के 99 प्रतिशत मुसलमानों की नसों में हिन्दू रक्त ही है। अतः हम सब मजहब से मुसलमान होते हुए भी जाति से हिन्दू ही हैं।

मजहब से मुसलमान—संस्कृति से हिन्दू

श्री छागला का यह दृष्टिकोण दक्षिण-पूर्व एशिया के मुसलमानों में अभी तक प्रचलित एवं प्रतिष्ठित है। एक बार पाकिस्तान के राजदूत ने इन्डोनेशिया के राजदूत से पूछा कि आप कैसे विचित्र मुसलमान हैं जो अपने देश में अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन एवं रामायण, महाभारत की लीलाएँ करते रहते हैं। इसके उत्तर में इन्डोनेशिया के राजदूत ने कहा—'यह सच है कि इतिहास की किसी उथल-पुथल में हमने अपना महजब बदल लिया है किन्तु हमने न ही अपना रक्त बदला है और न ही पूर्वज। रामायण और महाभारत इन्डोनेशिया के इतिहास एवं संस्कृति में इतने रच-पच चुके हैं कि उन्हें वहाँ की संस्कृति से विलग किया ही नहीं जा सकता।' यदि भारत के अधिकांश मुसलमान छागलाजी एवं इन्डोनेशिया के मुसलमानों के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मानने वाले होते तो कदाचित् हमारी मातृभूमि का विभाजन ही न होता। यदि अब भी श्री छागलाजी के स्वर्गवास पर उनकी ज्वलन्त प्रेरणा को रावी एवं गंगा के आर-पार बसने वाले मुसलमान बन्धु अपना लें तो भी तीन टुकड़ों में बंटा हुआ यह महान् देश पुनः एक हो सकता है।

न्याय एवं लोकतन्त्र के पक्षधर

श्री छागला न्याय, लोकतंत्र एवं नागरिक अधिकारों के इतने महान् पक्षधर थे कि उन्होंने सिद्धान्त के लिए अनेक बड़े-बड़े पदों को ठुकरा दिया, किन्तु सिद्धान्त पर आँच नहीं आने दी। उन्होंने आपातस्थिति का भी डटकर विरोध किया था और अभी हाल ही में उन्होंने सरकार द्वारा लादे गये आन्तरिक सुरक्षा कानून का बड़े साहस एवं निर्भीकता से विरोध किया। श्री छागला विधि के एक महानतम विशेषज्ञ, न्याय के श्रेष्ठतम पक्षधर, लोकतन्त्र के सजग प्रहरी, संस्कृति के निष्ठावान पुजारी तथा राष्ट्रीयता के इतिहास दुर्लभ आदर्श थे।

संस्कृति के अधिष्ठान पर शिक्षा की पुनर्रचना

कुछ वर्ष पूर्व श्री छागला ने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के दिल्ली में राष्ट्रीय अधिवेशन में मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए विद्यार्थी परिषद् के इस मन्तव्य का बड़ा प्रबल समर्थन किया कि भारत में शिक्षा का इस प्रकार से भारतीयकरण होना चाहिए जिससे भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने वाले नवयुवकों को अनायास ही भारत की आत्मा का दर्शन प्राप्त हो सके।

छागला-स्मारक रजत पदक

संस्कृति विहार, रांची द्वारा उनके सम्मान में एक छागला स्मारक रजत पदक प्रारम्भ किया जा रहा है जो प्रतिवर्ष श्री छागला की पुण्यतिथि पर छोटानागपुर क्षेत्र के उस मुस्लिम सज्जन को प्रदान किया जायेगा जो छागलाजी की विचार-धारा के अनुरूप भारत की मौलिक संस्कृति की महानतम सेवा करने वाला प्रमाणित होगा।

स्वातंत्र्य के अमर साधक तथा लोकतन्त्र के महान् रक्षक : राष्ट्रपति वराहगिरि वेंकटगिरि

राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के स्वर्गवास से एक महान् देशभक्त, संविधान संरक्षक, विधिवेत्ता, श्रमिक वर्ग का सच्चा हितैषी तथा राष्ट्र का एक अद्वितीय मार्गदर्शक हमसे छिन गया है।

श्री गिरि जब आयरलैण्ड में शिक्षा प्राप्ति हेतु गये थे तब वे वहाँ के महान् देश-भक्त तथा बाद में वहाँ के राष्ट्रपति पद पर आसीन होने वाले प्रो. डी. वलेरा की स्वातंत्र्य निष्ठा एवं राष्ट्रभक्ति से बहुत प्रभावित हुए थे। यह अद्भुत संयोग है कि डी. वलेरा आयरलैण्ड के राष्ट्रपति बने तथा उनके शिष्य वी.वी. गिरि भारत के राष्ट्रपति बने। श्री डी. वलेरा श्री गिरि एवं अन्य शिष्यों को बार-बार यह कहते थे—'भूल में मत रहो, ये आयरलैण्ड वास्तव में आर्यलैण्ड ही है। आर्यावर्त्त से आर्य जाति के लोग ही सारे यूरोप में फैलते हुए आयरलैण्ड तक पहुँचे थे।' वे आग्रह पूर्वक कहते थे, 'आर्यावर्त्त एवं आयरलैण्ड दोनों को अंग्रेजों की दासता से मुक्त होना है।'

श्री गिरि के भारत में पहुँचने पर उन्हें महात्मा गांधी जैसे महान् राष्ट्रनिर्माता का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। डी. वलेरा ने स्वाधीनता का जो सिद्धान्त दिया, गांधीजी ने उसके लिए साधना का पथ दर्शाया और स्वाधीनता की सिद्धि के उपरान्त श्री गिरि प्रदेश एवं देश के अनेक पदों को सुशोभित करते हुए एक दिन स्वाधीन भारत के राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए तथा स्वाधीन आयरलैण्ड के राष्ट्रपति (अपने गुरु) डा. डी. वलेरा से हाथ मिलाने गये। तब स्वाधीन आर्यावर्त्त एवं स्वाधीन आयरलैण्ड ने गद्गद भाव से परस्पर वन्दना-अभिवन्दना की।

श्री गिरि ने अपने स्वर्गवास से केवल तीन सप्ताह पूर्व Illustrated Weekly में एक बड़ा विचारोत्तेजक लेख दिया था Poll for one party rule (एक दल के शासन हेतु चुनाव) जिसमें उन्होंने लिखा था कि राष्ट्रपति के रूप में वे केवल कुर्सी की शोभा बढ़ाने वाले और प्रधानमंत्री की हर बात को आँख मूंद कर मानने वाले रबर स्टाम्प राष्ट्रपति नहीं थे। उन्होंने आपातकाल की घोषणा पर

इन्दिरा गांधी को जोरदार पत्र लिखा था कि यह इमरजेन्सी एक स्वाधीन लोकतन्त्र के लिए अपमानजनक है। उन्होंने लिखा कि आपातकाल के विरुद्ध सलाह देने वाले भीमसेन सच्चर जैसे अनेक प्रतिष्ठित नेताओं को मीसा में बन्दी बना दिया गया। इन्दिरा गांधी उन्हें भी बन्दी बना सकती थी जिसे वे सहर्ष स्वीकार करते। वे पुनः देश की अतिशय निर्धनता से दुःखी हो कर अश्रु प्रेरक वाणी में कहते— 'इस आजाद देश के सामान्य नागरिक को भोजन, कपड़ा और आवास की उतनी सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हैं जितनी कि कारागार में कैद भुगतने वाले किसी चोर, डाकू या कातिल जैसे अपराधियों को भी प्राप्त होती है।' इसीलिए भुखमरी का शिकार एक गरीब सज्जन भूख से लाचार होकर अपराधी बनता है ताकि जेल में रोटी, कपड़ा और कोठरी तो मिल जाएगी।

उन्होंने अपने उक्त लेख में लिखा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी देश में एक ही दल की तानाशाही लादने के लिए चुनाव करवा रही हैं ताकि विरोधी पक्ष को बिल्कुल कुचल दिया जाये तथा राज्यों की स्वायत्तता समाप्त कर केन्द्र के हाथ में सर्वसत्ता केन्द्रित हो जाय। उन्होंने आशंका व्यक्त की कि इमरजेन्सी का सबसे बड़ा सलाहकार प्रधानमंत्री का पुत्र संजय गांधी ही था तथा अब पुनः उसी की व्यूह रचना के अनुसार विरोधी पक्ष को कुचल कर, पुराने नेताओं को किनारे धकेल कर उग्रवादी, अधीर एवं सत्तालोलुप जवानों को आगे लाकर राज्यों की स्वायत्तता भी शून्यप्रायः कर के, केन्द्र को सर्वशक्तिमान बनाकर उसी संजय गांधी को देश का सर्वोच्च शासक बनाने का राजनीतिक खेल खेला जा रहा है।

यह दैवी संयोग की बात है कि 23 जून की प्रातः श्री संजय गांधी 34 वर्ष की अल्पायु में ही एक हृदयविदारक दुर्घटना से स्वर्गवासी हुए तथा 24 जून प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में श्री गिरि 86 वर्ष की आयु में शान्तिपूर्वक परलोक सिधार गये। उन वृद्ध एवं युवा नेता, दोनों को आज सारा राष्ट्र यथायोग्य श्रद्धा के फूल चढ़ा रहा है।

'यदि तुम आओ तो तुम्हारे साथ, यदि नहीं तो तुम्हारे बिना, यदि तुम विरोध करो तो उसकी अवहेलना करते हुए, मैं अपना कार्य निरंतर करता रहूंगा।'

—वीर सावरकर

यशस्वी उद्योगी, राष्ट्र कर्मयोगी घनश्यामदास बिड़ला

मेरा तो मेरे साथ राख हो जायगा
दूसरों का दिया हुआ, शायद रह जायगा।
न भी रहे तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं
आत्मा अर्थात् मैं पर कोई आघात नहीं।
भूख-विवश देह की भोग में भक्ति है
भोजन, पानी पर टिकी देह की शक्ति है,
भोग्य वस्तु, व्यक्ति से बढ़ती अनुरक्ति है
इसी से जनमती जगत्-आसक्ति है
किन्तु जगदीश्वर की अमानत वह सारी निधि
जगत् के जीव कल्याण हेतु अर्पित कर
मुझे लीन होना है उसी जगदीश्वर में
जहां चिर शान्ति है और अनासक्ति है।

अनासक्त भाव से चिर शान्ति की गोद में

लन्दन में 11 जून को अपने महाप्रयाण से कुछ समय पूर्व 90 वर्षीय स्व. बाबू घनश्यामदास बिड़ला ने एक पारिवारिक, अनौपचारिक विचार गोष्ठी में अपने यह विचार व्यक्त किये थे जिनमें उनके मृत्यु दर्शन एवं महाप्रयाण के पूर्वाभास का भाव झलकता है। ऊपर की पंक्तियों में उनके विचार का काव्य रूपान्तर है।

हिन्दी के वर्चस्वी कवि-लेखक श्री वियोगीहरि जो 50 वर्षों से श्री घनश्यामदास बिड़ला के सहयोगी एवं स्नेहभाजन रहे हैं, लिखते हैं, 'देखा था कि इधर दो-तीन वर्षों से वह 'कूच' करने की तैयारी में रहते थे। कहा करते थे कि सामान यूँ थोड़ा है, फिर भी उसे पैक कर रहा हूँ।' तात्पर्य था सामान उन सब सद्विचारों और सुकृतों का जो उनके सहज बन पड़े थे।....दीखता था कि ऐहिक

कर्मों में वे आकंठ डूबे हुए हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं। अनासक्ति की ओर बढ़ने का उनका यथाशक्ति प्रयास रहता था।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी गीता का सार संदेश अनासक्ति योग ही मानते थे उनसे 32 वर्ष लम्बा, उनके स्वर्गवास पर्यन्त, स्नेह सहयोग सम्बन्ध रखने वाले श्री घनश्यामदास बिड़ला ने बापू के गीता तत्त्व को मानो जीवन में साकार करने में ही जीवन भर साधना की थी। एक लंगोटीधारी की अनासक्ति की अपेक्षा एक कोटिपति की अनासक्ति कुछ विशेष महत्त्व रखती है।

मानव आसक्ति के दो माध्यम हैं—अहंता और ममता। अहंता का अर्थ है गलत मैं का भाव। जब मनुष्य मायावश शरीर को ही मैं समझ बैठता है तो देहाभिमान से शरीर से सम्बन्धित भोग्य वस्तुओं, व्यक्तियों एवं धन-सम्पत्ति, उद्योग-व्यवसाय आदि को भी ममतावश मेरा समझकर उनकी आसक्ति के पाश में बंध जाता है। इसलिये काल देव के स्वागत में बिड़लाजी अनासक्त भाव से कहते हैं—

'मेरा तो मेरे साथ राख हो जायेगा' अर्थात् शरीर रूपी मैं के नष्ट होते ही इसका सब स्वामित्व भी भस्म हो जाएगा। दूसरी ओर अहंता के नाश के साथ ही ममता भी राख हो जायेगी।

बिड़लाजी लिखते हैं—'संसार यात्रा के लिये हर प्राणी एक कार्य लेकर आता है। उस कार्य के सिद्ध होने पर वह संसार से विदा हो जाता है क्योंकि तब उसके जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।' बिड़लाजी भी नब्बे वर्ष तक स्वस्थ सुफल एवं यशस्वी जीवन जीने के पश्चात्, लगभग 77 वर्ष के व्यवसाय-उद्योग के गौरवशाली कीर्तिमान के पश्चात् शिक्षा, साहित्य, धर्म, दर्शन, संगीत, कथा, विज्ञान प्रौद्योगिकी, अध्यात्म सभी में अपना समुचित योगदान देने के पश्चात् संसार से निर्लिप्त भाव से विदा हो गये। उनके महान् जीवन का कार्य पूर्ण हो गया।

रंक से राजा, क्षत्रिय से वैश्य, बेहड़ला से बिड़ला

देश के सबसे बड़े धनपति बिड़लाजी को न अपनी निर्धनता का इतिहास कभी भूला था और न ही कोटिपति-अरबपति होने का अहंकार उन्हें धन मदांध, भोगी-विलासी या अत्याचारी बना सका था। नवलगढ़ राजस्थान के एक प्रतिहार (पंवार) वंश के क्षत्रिय वीर का नाम बेहड़सिंह था। कालांतर में वही नाम राजस्थानी उच्चारण परिपाटी में बेहड़ा, बहिड़ा, बेहड़ला, बिड़ला और अंग्रेजी उच्चारण लेखन में बिरला बन गया। बौद्ध एवं वैष्णव प्रभाव से शिकार वृत्ति त्यागकर अहिंसा का व्रत लेने तथा शस्त्रकर्म त्यागकर व्यवसाय करने के फलस्वरूप बिड़ला परिवार क्षत्रिय से वैश्य माना जाने लगा।

राजा बलदेवदास बिड़ला से चार पीढ़ी पूर्व उनके वृद्ध प्रपितामह भूधरमल बिड़ला सपरिवार नवलगढ़ राज्य के बुधौली ग्राम से शेखावाटी राज्य के पिलानी गांव में आकर बस गये। उनके तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र उदयराम बिड़ला के आगे 3 पुत्र हुए—शोभाराम, रामधनदास एवं चुन्नीलाल। शोभाराम बिड़ला (श्री घनश्यामदास बिड़ला के परदादा) मात्र 10 रुपये मासिक वेतन पर एक साधारण दुकान में प्रबन्धक थे। बाबू घनश्यामदास बिड़ला स्वयं लिखते हैं—'मेरे प्रपितामह 10 रुपये मासिक के मामूली वेतन पर एक व्यापारिक प्रतिष्ठान में प्रबन्धक थे। उनके न रहने पर पितामह (श्री शिवनारायण बिड़ला) ने 18 वर्ष की वय में अपना निजी कारोबार शुरू करने का निर्णय किया और भाग्य की तलाश में बंबई गये। बाद में मेरे पिता (राजा बलदेवदास बिड़ला) ने इस कारोबार को फैलाया और जब मेरा जन्म हुआ तो हमारा परिवार खुशहाल परिवार था, जिसका 35 वर्ष से जमा हुआ व्यवसाय था। मैंने अपनी तथाकथित पढ़ाई पूरी की ही थी कि मुझे भी पारिवारिक धंधे में लग जाने को कहा गया और 12 वर्ष की वय में मैं उसमें कूद पड़ा।'

बिड़लाजी को 10 रुपया मासिक वेतन पाने वाले परदादा की कंगाली का तथ्य कथन करने में कोई संकोच या हीनभावना भी नहीं थी तथा स्वयं देश के सबसे धनी प्रतिष्ठान का स्वामी बन जाने का कोई अभिमान भी नहीं था। यह मानसिक सन्तुलन एवं अनासक्ति गीता, उपनिषद् के स्वाध्याय तथा मालवीयजी एवं गांधीजी के सत्संग का ही सुफल था।

धनकुबेर से कल्याणनिधि न्यासी

भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं गांधीजी की शिक्षा के अनुसार बिड़लाजी सब धन को समाज या परमेश्वर का मानकर स्वयं को मात्र न्यासी (ट्रस्टी) मानते थे। वह कहा करते थे—

'ठीक है पैसा कमाओ पर ध्यान रखो, वह साथ जाने वाला नहीं है, लोकहित के कामों में पैसे का सदुपयोग करो।'

बिड़लाजी की स्कूली शिक्षा तो मात्र 12 वर्ष तक, ग्रामीण बहीखाते लिखने के स्तर तक ही हुई किन्तु उन्होंने अपने परिश्रम, स्वाध्याय एवं अध्यवसाय द्वारा विश्व के खुले हुए विश्वविद्यालय का प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया था। वे साहित्य, संगीत, विज्ञान, प्रविधि, राजनीति, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं अध्यात्म के चलते-फिरते पुस्तकालय ही थे। 60 वर्ष की अवस्था में वह रुचिपूर्वक फ्रेंच भाषा सीख रहे थे। जीवनभर वे प्रातःकाल की सैर के समय एक विद्वान को साथ लेकर घूमते थे। रात्रि-शयन से पूर्व नियमित रूप से कथा-पुराण सुनते थे। इस प्रकार वे बहुश्रुत, बहुज्ञ एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा मंडित महापुरुष बन गये थे। बिड़लाजी के

व्यक्तित्व में ज्ञान, भक्ति, कर्म का समन्वय होते हुए भी भक्ति-भागीरथी का स्वर सबसे मुखर था। वह तुलसीदास के पद एवं गीता के भक्ति योग के श्लोक सस्वर गाते हुए अश्रुपुलकित हो जाते थे। श्री रतनलाल जोशी के शब्दों में वह भक्ति के अमृत को वर्ण, आश्रम, जाति, उपजाति की सीमाओं से मुक्त कर मेघजल की भांति सर्वसाधारण में बांटने के लिए धरती पर उतरे थे। भक्ति शब्द भज धातु से बना है जिसका अर्थ ही है सेवा। अतः बिड़लाजी भक्ति का रूपान्तर 'सर्वभूत हित' के अर्थ में करते थे। गीता में आदर्श भक्तों को **सर्वभूतहितेरताः** कहा गया है।

बिड़लाजी का कथन है—'कुछ भी करो, जो मनुष्य मात्र के साथ एकरूप होकर भोगा नहीं जाएगा, वह किसी का भी भोग्य नहीं रहेगा। 'मेरा भला' ये दो परस्पर विरोधी शब्द हैं—समाज के पेट में सब है, फिर 'भला' सिर्फ मेरा ही कैसे सम्भव हो सकेगा?'

मर्यादा मण्डित महामानव

बाबू घनश्यामदास बिड़ला का जन्म श्री रामनवमी के पावन दिवस पर सन् 1894 में राजस्थान के पिलानी गांव में हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि राम भक्ति एवं श्रीराम की मर्यादा का वरदान उन्हें जन्मजात ही प्राप्त हुआ था। उनके अपने शब्द हैं, 'महान् व्यक्ति न गली-गली में पैदा होते हैं न हर सदी में जन्म लेते हैं।' उन्हें इस बात का दुःख था कि इतिहास के कुछ महान् कहलाने वाले प्रसिद्ध पुरुष भी चरित्र से दुर्बल थे। वह लिखते हैं, 'चर्चिल एक महान् व्यक्ति था। मेरा भी उनसे काफी सम्पर्क था।....पर चर्चिल की दूसरी शक्ल भी थी। लार्ड मोरेन चर्चिल का अपना खास चिकित्सक था।....इसलिए उसके दोषों को भी वह जानता था। उसने चर्चिल के दोषों का भी विवरण दिया।' वे पुनः लिखते हैं, 'रूजवेल्ट भी एक महान् व्यक्ति था। पर उसके चरित्र लेखक ने यह भी बताया कि रूजवेल्ट विवाहित होने पर भी एक अन्य महिला से सांठ-गांठ रखता था। हमारी भारतीय संस्कृति के मापदंड से तो वह व्यभिचारी पुरुष था।'

रूसो फ्रांस का एक उत्कृष्ट विचारक था। सारे 'कांफेशन्स' में उसने अपने व्यभिचारों का एक नंगा चित्र जनता के सामने रखा है।....ऐसा भी कथन है कि उसकी मानसिक विक्षिप्तता ने उसे इस जंजाल को लिखने के लिए प्रेरित किया। किसी ने इसे धूर्त और लुच्चा भी बताया है। संसार में अनेक शक्तिशाली नेता एवं वैभवशाली व्यवसायी हुए किन्तु कुछ बिरले ही बिड़लाजी के समान चरित्र के धनी भी रह सके। सत्ता का मद एवं धन का मद, मनुष्य को प्रायः कांचन-कामिनी की माया में बांध लेता है।

बिड़लाजी को भक्ति एवं नैतिकता के संस्कार पैतृक परम्परा से भी मिले थे। वह लिखते हैं, 'मेरे बाबा और पिताजी अतिशय सामान्य लेकिन ईश्वर भक्त

थे। उनका जीवन बहुत कठोर था। उन्हीं की आज्ञा से मुझे भी प्रातः 5 बजे ही उठना पड़ता था। मेरे पिताजी बहुत जोर देते थे कि मैं उनके साथ पूजा किया करूँ। इस नियम से मैं बच नहीं सका, रोज पूजा करता था। धीरे-धीरे ईश्वर में मेरा विश्वास गहरा होता गया। ईश-प्रार्थना में मैंने अपने आप को बहुत घने रूप में जोड़ा, पर उससे भी अधिक मेरा विश्वास कर्म के प्रति भी बना। मैंने एक फार्मूला (सूत्र) बनाया—'ईश्वर के नाम पर कर्म, होंठों पर उनका नाम और हृदय में उन्हीं के लिए सच्चा प्यार।'

गांधीजी के निम्न वचन को अपनी पुस्तक 'डायरी के पन्ने' में लिखकर बिड़लाजी ने अपने हृदय पटल पर लिख लिया था, 'मुझे रोटी न मिले तो व्याकुल नहीं होता, परन्तु प्रार्थना के लिए तो पागल हो जाऊंगा।'

राजा बलदेवदास बिड़ला के चारों पुत्र चरित्रवान थे। उनके तप से ही बिड़ला बन्धु संस्थान बना तथा उन्नति में आकाश को चूम लिया। जनवरी 1965 में जब बाबू युगलकिशोर बिड़लाजी के तार संदेश से मैं गोहाटी से कलकता बिड़ला भवन आया तो श्री आदित्य बिड़ला के विवाह प्रसंग पर चारों भाइयों के दर्शन हुए— श्री युगलकिशोर बिड़ला, श्री रामेश्वरदास बिड़ला, श्री घनश्यामदास बिड़ला एवं श्री ब्रजमोहन बिड़ला। आज चारों भाई स्वर्गवासी हो चुके हैं तथा देश के इतिहास में प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

अविश्रान्त कर्मयोगी

श्रम करते-करते मनुष्य श्रांत हो जाता है, थक जाता है, तब उसे विश्राम की, विश्रान्ति की आवश्यकता होती है। निजी स्वार्थ के लिये, पेट के लिये श्रम करने वाला श्रमिक होता है, किन्तु लोक कल्याण के लिये श्रम करने वाला श्रमण (वीतराग तपस्वी) होता है। श्रम का स्थान यंत्र शाला, कृषिभूमि या कर्मशाला कहलाता है, किन्तु लोक कल्याणार्थ श्रम करने का (श्रमण की तपस्या का) स्थान आश्रम (आ+श्रम) बन जाता है।

कर्म भोगी जीवन भर कर्मों का बोझा ढोते हुए आँसू बहाता रहता है। कर्मयोगी हँसते-हँसते कर्मों के फूलों से भगवान् या राष्ट्र देवता का पूजन करता रहता है तथा थकान अनुभव नहीं करता। घनश्यामदासजी स्वयं लिखते हैं—कड़े परिश्रम से कोई नहीं मरता। केवल कड़ी मेहनत से ही मैं दीर्घायु लाभ कर देशवासियों की अपनी तुच्छ निधि से सेवा कर सकता हूँ।

उनकी दृष्टि में किसी व्यक्ति का जनकल्याण में सहयोग बन्द करना एक सामाजिक अपराध है। जब तक शारीरिक एवं मानसिक रूप में मनुष्य स्वस्थ हो उसका कर्म छोड़ देना अनुचित है। कर्म ही उपासना है, गीता के उस आदर्श को

मानते हुए श्री बिड़ला, चाहे भारत में हो या विदेश में न केवल अपने उद्योगों से सजीव सम्पर्क रखते थे वरन् विश्वभर के अनुभव प्राप्त कर सदा नवीन एवं चुनौती भरे उद्योगों एवं अध्यवसायों में साहसपूर्वक पहल करने में सदैव तत्पर रहते थे।

महापुरुषों की छाया में

सेठ घनश्यामदास बिड़ला एक स्वाधीनता सेनानी एवं अध्यात्म साधक के रूप में गांधीजी, डा. राजेन्द्रप्रसादजी, मालवीयजी, पं. नेहरू, श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार, स्वामी अखंडानन्दजी सरस्वती, स्वामी चिन्मयानन्दजी, पं. रामकिंकर उपाध्यायजी आदि के निकट संपर्क में आए। बिड़लाजी लिखते हैं—गांधीजी से मेरा पचीस साल (पुस्तक लिखने तक 25 वर्ष, गांधी निर्वाण तक 32 वर्ष) का संसर्ग रहा है। मैंने अत्यन्त निकट से, सूक्ष्मदर्शक यंत्र की भांति उनका अध्ययन किया है। समालोचक होकर छिद्रान्वेषण किया है। पर मैंने उन्हें कभी सोते (विवेकहीन) नहीं पाया। इस पुस्तक (बापू) के विषय में स्वयं गांधीजी ने लिखा, 'बापू पुस्तक की पूरी भाषा मधुर है। कई जगह दलील की पुनरुक्ति हो गई है। उससे भाषा के प्रवाह में कोई क्षति नहीं आती।' इस पुस्तक के आदिवचन में श्री महादेव भाई देसाई ने लिखा है, 'सारी पुस्तक बिड़लाजी की तलस्पर्शी परीक्षण शक्ति का सुन्दर नमूना है।'

बिड़लाजी लिखते हैं—'गाँधीजी के निर्णय तर्क के आधार पर नहीं होते। तर्क पीछे आता है, निर्णय पहले बनता है। वास्तव में शुद्ध बुद्धि वालों को निर्णय में ज्यादा सोच-विचार नहीं करना पड़ता। एक अच्छी बन्दूक से निकली हुई गोली सहसा तेजी के साथ निशाने पर जाकर लगती है। इसी तरह स्थितप्रज्ञ दर्शन भी यंत्र की तरह झटपट बनता है, क्योंकि 'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफला श्रयत्वम्।'

स्वाधीनता आन्दोलन के विषय में वह लिखते हैं—'धार्मिक विप्लव यहाँ अनेक हुए हैं, पर राजनीति का जामा पहनकर धर्म किस तरह अपनी सत्ता जमाता है, वह देश के लिए एक नया ही अनुभव है।'

महामना मालवीयजी के विषय में बिड़लाजी के संस्मरण बड़े मार्मिक हैं। बिड़लाजी कहते हैं—मैंने एक बार महामना प. मदनमोहन मालवीयजी से कहा था, पण्डितजी महाराज! आप अपना जीवन चरित्र लिखिए। मालवीयजी के जीवन ने मुझे काफी प्रभावित किया था। वे साधु, क्षमाशील, सुपठित और एक चरित्रवान व्यक्ति थे, उनमें अनेक गुण थे जो लोगों के लिये अनुकरणीय हो सकते थे।

उत्तर में पण्डितजी ने कहा—'घनश्यामजी! जीवन चरित्र पढ़ना हो तो श्रीमद्भागवत पढ़ो। मेरे जीवन में क्या रखा है?' ये शब्द मेरी अन्तरात्मा में ऐसे बिंध गये जैसे निशाने पर तीर।

बिड़लाजी ने 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' नामक एक ऐसा सरल सुबोध गीता-भागवत-महाभारत का तात्त्विक विश्लेषण लिखा है, जो जीवनी से बढ़कर संजीवनी बन गया है। इसमें आदर्श और प्रयोग, नीति और नैतिकता के जीवन मूल्यों का हृदयस्पर्शी आत्मानन्ददायी चित्रण हुआ है।

वे लिखते हैं—'न तो व्यास ने अपने बारे में कुछ लिखा, न उपनिषद् के रचयिताओं ने ही अपना कुछ इतिहास लिखा। यह निःस्पृहता की भावना ही प्राचीन काल में हजारों वर्षों तक चलती रही और उसका अनुकरण बुद्ध, शंकर, रामानुज, मध्व और अन्य आचार्यों ने भी किया। तुलसी, मीरा, कबीर भी इसी पदचिह्न पर चले।'

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा, 'घनश्यामदासजी उन भाग्यवान लोगों में से एक थे जो गाँधीजी के पुत्रवत बन गये और जिसमें उनके शिक्षा के बीजों को अंकुरित होने के लिये संस्कृत-भूमि प्राप्त हो गई तथा उनका सन्देश भी सद्यः फलीभूत हो गया।'

स्वर्गीय श्री हनुमानप्रसाद पोद्दारजी को बम्बई कल्याण नामक पत्रिका प्रकाशित करने की प्रेरणा श्री घनश्यामदास बिड़लाजी ने दी थी। श्री पोद्दारजी के बम्बई छोड़कर कलकत्ता और गोरखपुर जाने पर बिड़लाजी ने 108 ब्राह्मणों द्वारा 108 भागवत सप्ताह का आयोजन करवाया था।

आधुनिक युग के भामाशाह

'श्री बिड़लाजी ने प्रचुर मात्रा में धन कमाया और प्रत्येक अच्छे कार्य के लिए प्रचुर मात्रा में उदारतापूर्वक दान भी किया।' डा. राजेन्द्रप्रसाद के इन शब्दों में एक महान् सत्य का कथन है। उनका दिल्ली का बिड़ला भवन स्वाधीनता सेनानियों का अघोषित संसदभवन, नेताओं का विश्राम स्थल, गांधीजी का कर्मस्थल एवं निर्वाण स्थल तथा बाद में राष्ट्रीय स्मारक बन गया। स्वाधीनता यज्ञ में उन्होंने गांधीजी को कोरी चेकबुक दे रखी थी। देश के दोनों नोबेल पुरस्कार विजेताओं विश्वविश्रुत वैज्ञानिक श्री सी.बी.रमन एवं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दोनों को बिड़लाजी ने समुचित सहयोग दिया। श्री सी.बी. रमन ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने से पूर्व श्री घनश्यामदास बिड़लाजी को पत्र लिखा, 'यदि आप एक विशेष उपकरण खरीदने हेतु मुझे 22 हजार रुपया दे दें तो सम्भवतः मैं नोबेल पुरस्कार जीत सकता हूँ।' श्री बिड़लाजी ने तुरंत उन्हें 22 हजार रुपये का चेक भेज दिया। टैगोरजी के शान्ति निकेतन हेतु भी उन्होंने लाखों रुपया दान किया। भारतीय विद्या भवन मुम्बई, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इत्यादि अनेक संस्थाओं को उन्होंने प्रचुर दान दिया। लन्दन में एक विशाल लक्ष्मीनारायण मन्दिर बनवा रहे थे।

शिक्षा सेवा एवं साहित्य सेवा

बिड़लाजी ने अपने पैतृक ग्राम पिलानी में मरुभूमि के भीतर एक ऐसी हरीतिमा पूरित शिक्षा की फुलवारी लगा दी, जो विश्वविद्यालय के स्तर तक विकसित होकर देश की मूर्धन्य शिक्षा संस्था बन गई है। वहाँ के सरस्वती मन्दिर की तुलना का देवालय देश भर में अन्यत्र कहीं नहीं होगा। उन्होंने सस्ता साहित्य मंडल की स्थापना की। बिड़लाजी ने नागरी प्रचारिणी सभा एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन हेतु भरपूर आर्थिक सहयोग दिया। सन् 1924 में सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के रूप में उन्होंने भाषण किया—'अगर हमें हिन्दी का भंडार भरना है और इसे भाषाओं की चोटी पर पहुँचाना है तो हमें प्रान्तीय भाषाओं से बहुत कुछ लेना होगा।....हर प्रकार की कृत्रिमता से हमें अपनी भाषा को बचाना चाहिए।'

ध्रुवोपाख्यान की तार्किक व्याख्या

श्री बिड़लाजी लिखते हैं—राजा उत्तानपाद ने दो घोड़ों पर पाँव फैलाया था।... सुरुचि (अच्छा भोजन वस्त्र) जो आकर्षण की ओर खींचने वाली है। सुनीति (श्रेष्ठ गुण सम्पदा) जिसके बिना उद्धार नहीं। सुरुचि प्रेय हो सकती है, पर श्रेय तो सुनीति है।... सुरुचि में जिन्दगी चैन से कट सकती है, पर सुनीति के चाहने वाले को तो अपने सिद्धान्तों के लिये मर मिटना भी पड़ता है।... सुनीति की सन्तान ध्रुव अचल, जो शाश्वत है, जो सत्य है, राजा को उससे उदासीनता हो गई।... ध्रुव का तप सफल हुआ। अन्त में उत्तानपाद ध्रुव को सिंहासन पर बिठा स्वयं विरक्त हो वन चला गया।

व्यापार-उद्योग दर्शन

भारतीय उद्योग जगत् के पितामह श्री घनश्यामदास बिड़ला का उद्योग दर्शन भी निराला था। उसके कुछ सूत्र इस प्रकार थे—

(क) भारत को आत्म निर्भर बनाने हेतु स्वदेशी उत्पादन पर बल। जहाँ सूई-धागा, ब्लेड, बटन तक भी विलायत से आते थे वहाँ बिड़लाजी ने कपड़ा, टेरालीन, कार, रेलवे इंजन, फ्रिज, रेडियो, राकेट आदि भी अपने देश में विकसित करके दिखा दिये।

(ख) नये आविष्कारों से देश को समृद्ध बनाना। 40 वर्ष पूर्व ही उन्होंने कह दिया था कि कपड़ों का भविष्य टेरालीन के निर्माण में है। उन्होंने ही देश में सर्वप्रथम मिल 'ग्वालियर रेयन' स्थापित की।

(ग) उद्योग के विधिवत नियोजन, संगठन, प्रबन्ध, कार्यालय व्यवस्था में उन्होंने स्वदेशी क्षमताओं का सदुपयोग एवं विकास कर भारत को एशिया का एक महान् औद्योगिक देश बना दिया।

(घ) उन्होंने एक पुस्तक 'कर्जदार से साहूकार' में देश एवं देशवासियों को ऋणी से ऋणमुक्त धनाढ्य बनने की युक्ति बताई।

(ड़) गाँधीजी की प्रेरणा से उन्होंने 'रुपये की कहानी' लिखी तथा हिन्दी में हुण्डी की प्रथा चालू की। इसमें उनके सफल उद्योगपति के कौशल एवं चतुराई का दर्शन होता है।

(च) मानेटेरी रिफार्म (Monetary Reform) तथा बम्बई प्लैन (Bombay Plan) में देश के आर्थिक सुधार एवं समृद्धि का मन्त्र दिया जिसे इंग्लैण्ड के सरकारी अर्थशास्त्रज्ञ सर हेनरी स्ट्राकोश भी बड़ा महत्त्वपूर्ण मानते थे।

(छ) जेनेवा में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (1927) में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

(ज) बिड़ला बंधुओं की उद्योग नीति पर वे लिखते हैं—'केवल धन कमाने के लिए नहीं, वरन उद्योग के नये अछूते क्षेत्रों का स्पर्श, देश की अविकसित क्षमताओं का विकास, ज्ञान संज्ञान को बढ़ावा, कारीगरी एवं तकनीकी श्रम का निर्माण, व्यवस्था-योग्यता का संवर्धन, अभाव मुक्त, स्वतंत्र भारत का निर्माण।

मुझसे सब अच्छे

अपने निबन्ध संग्रह 'मुझसे सब अच्छे' में बिड़लाजी के निर्मल विनयी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। 'मैंने हवा को कहा—तुम संसार का इतना उपकार करती हो तो अपनी थोड़ी सी खबर अखबारों में बढ़ा-चढ़ाकर छाप दिया करो।' हवा ने कहा—'मेरा अखबार है मेरा ईश्वर का हृदय। निस्वार्थ भाव से प्राणी मात्र की सेवा करना यही मेरा धर्म है।' इसे पढ़कर गांधीजी ने लिखा, 'तुम साधु बनोगे और साधु ही रहोगे।' उस आजीवन साधनारत साधु को नमनांजलियाँ। उस युग के हिरण्यदीप को श्रद्धांजलियाँ।

6 जुलाई, 1983
'रांची एक्सप्रेस' में प्रकाशित

बाबू युगलकिशोर बिड़ला के विचार

वेद

हिन्दुओं की मान्यता है कि वेद अनादि, स्वयंसिद्ध और अपौरुषेय हैं। क्योंकि वेद शब्द का अर्थ होता है ज्ञान और ज्ञान अनादि और अपौरुषेय है।

महाभारत

महाभारत सचमुच एक अनुपम ग्रंथ है, यह सर्वमान्य सम्मति है। इसमें वेदान्त और लोकशास्त्र दोनों का समन्वय है। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, व्यवहार शास्त्र सभी का इसमें समावेश है। देवर्षियों ने चारों वेदों को एक पलड़े में रखा और महाभारत को दूसरे पलड़े में, जब तौला तो महाभारत को ही भारी पाया। सर्वसम्मति यह स्वीकार करती है कि महाभारत एक ऐसा अद्‍भुत पुराण और इतिहास का काव्य है, जिसकी तुलना में न तो संस्कृत में, न अन्य किसी भाषा में ही कोई दूसरा ग्रंथ उपलब्ध है।

अवतार हेतु

नर नारायण के अवतार का हेतु भी यही बताया गया है कि इस लुप्त और जीर्ण भागवत धर्म का अर्थात् प्रवृत्ति-मार्ग या निष्काम कर्म का जिसको कर्मयोग भी कहा गया है, जीर्णोद्धार करना।

नारायणः परो धर्मः पुनरावृत्ति दुर्लभः
प्रवृत्ति लक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः।

—महाभारत शान्ति पर्व

प्रवृत्ति का तात्पर्य है कि संन्यास न लेकर मरणपर्यन्त अपने स्वधर्म का स्वार्थ और कामना रहित होकर अनासक्त भाव से कर्तव्यकर्म समझकर पालन करते जाना। ...कर्म को यज्ञ बताया गया है, और कहा गया है यज्ञ में ब्रह्म हैं। इसलिए कर्म या यज्ञ का त्याग करना मानो ब्रह्म की अवहेलना है। ...इस लुप्त धर्म को श्रीकृष्ण ने पुनः स्थापित किया।

महाभारत, भागवत गीता

महाभारत में कर्म योग पर विशेष बल दिया गया है और भक्ति को गौण स्थान दिया गया है। भागवत भी प्रवृत्ति का पोषक है, पर इसमें भक्ति पर विशेष आग्रह है। गीता में इन दोनों मार्गों के साथ ज्ञानयोग को मिलाकर ज्ञान, भक्ति, कर्म तीनों का समन्वय कर दिया है। गीता का यह सबसे बड़ा माहात्म्य है।

शंकराचार्य

वैदिक मार्ग को पुनः जीवित करने में सबसे बड़ा योगदान आदि शंकर का था। शंकराचार्य एक उच्च शिखर का विद्वान और विचारक था। ...शंकर जैसा विद्वान और विचारक बुद्ध के बाद अब तक नहीं हुआ। शंकर ने वेदान्त में और भागवत धर्म में एक ऐसी क्रान्ति पैदा कर दी जिसकी छाप भारतीय जीवन पर स्थायी रूप से अंकित रह गयी।

बौद्धधर्म

'यह आश्चर्य की बात है कि डॉ. अम्बेडकर जैसा विद्वान यह नहीं जानता या जानना नहीं चाहता कि बौद्धधर्म आर्य हिन्दू धर्म से पृथक् वस्तु नहीं है और प्राचीन हिन्दू धर्म का ही एक अंग मात्र है। बौद्ध मत का कोई भी मौलिक सिद्धान्त ऐसा नहीं है, जो आर्य (हिन्दू) धर्म से न लिया गया हो। कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष (निर्वाण), यम, नियम, अहिंसा आदि के सिद्धान्त जो बौद्धधर्म की विशेषताएँ हैं, सब आर्य हिन्दू धर्म से ही लिए गये हैं।'

—श्री यु.कि. बिड़ला एक बिंदु एकीकरन सिंधु पृ. 143

जात-पांत

डॉ. अम्बेडकर हिन्दुओं के जात-पांत के भेद तथा छुआछूत के कारण ही हिन्दू धर्म के सबसे अधिक विरोधी प्रतीत होते हैं। परन्तु जात-पांत का भेद, छुआछूत और अन्य सामाजिक रूढ़ियाँ वास्तव में हिन्दू धर्म नहीं है। रीति-रिवाज समय की आवश्यकता के अनुसार पैदा होते हैं और जब उनकी आवश्यकता नहीं रहती, आप ही आप लोप हो जाते हैं अथवा लोगों की चेष्टा से हटा दिए जाते हैं।

पृ. 143

वर्ण व्यवस्था कर्मणावर्णा

'आर्य हिन्दू धर्म का वर्ण विभाजन जन्म के आधार पर नहीं, वरन् गुण-कर्म के आधार पर किया जाता था। 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः'—गीता। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।'—मनु।

प्राचीनकाल में तो शूद्र से शूद्र और चाण्डाल से चाण्डाल व्यक्ति भी अपने गुण-कर्म की वजह से उच्च से उच्च ब्राह्मण की पदवी धारण कर सकता था। वाल्मीकि, वेदव्यास, सूत, विदुर आदि इसके अनेक उदाहरण हैं।... यह हिन्दू धर्म की उदारता और विशालता का ही परिणाम है।'

—श्री यु.कि. बिड़ला, पृ. 143

हरिजन समस्या

'भंगियों को हरिजन मानने का प्रधान कारण उनका कार्य था, जिसका संबंध स्वच्छता और स्पर्शास्पर्श के विचार से था। परन्तु भारत भर में भंगियों की संख्या 50 लाख से अधिक नहीं। दूसरा नम्बर है उन हरिजनों का जो चमड़ा उतारने का काम करते हैं। परन्तु इनको छोड़कर मोची, खटिक, नायक, धोबी आदि अनेक जातियाँ हैं, जिन्हें सरकारी सूची में हरिजन माना गया है। यद्यपि यथार्थ में वे अछूत या हरिजन नहीं हैं। इस प्रकार बढ़ाते-बढ़ाते हरिजनों की संख्या आज 50 लाख से 5 करोड़ कर दी गई है।.... यदि आज हरिजनों को दी जाने वाली विशेष राजनीतिक सुविधाएँ हटा ली जाएं, तो बहुत कम जातियाँ ऐसी होंगी, जो अपने को हरिजन कहलाना पसन्द करेगी।'

श्री यु.कि. बिड़ला, पृ. 144

'30 कोटि हिन्दुओं को बलि चढ़ाकर मुस्लिम नेताओं से एकता की आशा करना निरी मूर्खता है। देश हमारा है, जनसंख्या भी हमारी ही अधिक है, इसलिए भी हमारी उन्नति पर ही देश की उन्नति नहीं कही जा सकती है क्या? उस सच्चे सनातन धर्म का प्रचार होने से और हिन्दुओं की उन्नति होने से समूचे संसार का भी मंगल होने की संभावना है।'

—श्री यु.कि. बिड़ला, 1938 विशाल हिन्दुत्व, पृ. 17

आर्यावर्त्त म्लेच्छावर्त

'हमारी जनसंख्या, योग्यता और जीवनी शक्ति इस तेजी से घट रही है कि यदि हम लोग सजग नहीं हुए तो कुछ वर्षों में यह आर्यावर्त्त म्लेच्छावर्त्त हो जाएगा।'

श्री यु.कि. बिड़ला, 1938 विशाल हिन्दुत्व, पृ. 12

प्रतिवर्ष 687 लाख बंधु धर्मान्तरित

'अपने लिए यह कितनी लज्जा की और खेद की बात है कि आर्य धर्मियों की संख्या अनेक प्रकार से घटाई जा रही है और हम लोग चुपचाप आँखें बन्द किए बैठे हुए हैं। गाँवों में बीमारियों के समय विदेशी एवं विधर्मी दो खुराक दवा

देकर अथवा धोखा देकर हमारे भाइयों को अपनी संख्या में मिला लेते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष हमारे 6-7 लाख बंधु आर्य धर्म छोड़ते जा रहे हैं।'

श्री यु.कि. बिड़ला, 1938 विशाल हिन्दुत्व पुस्तक से

अछूत कौन?

'अपने को धर्मशास्त्र के जानकार मानने वालों को भी यह पता नहीं कि अछूतों में किसकी गणना करनी चाहिए। क्या कारण है कि नासिक और पूना में, उन शिक्षितों एवं वीर जातियों को जो शिवाजी के सिपाही थे, लोग अछूत मानते हैं और उन्हीं की जाति वालों को दूसरे प्रान्त में अछूत नहीं मानते, एक जाति एक प्रान्त में अछूत है और दूसरे में नहीं। सौ वर्ष पहले जिनको अछूत मानते थे उनको अब नहीं और अन्य को मानने लग गये। यह कोई नहीं सोचता-विचारता कि अछूत कितने और कहाँ हैं तथा क्यों और कैसे बन गये? लोग यह भी नहीं सोचते कि इन चोटीधारी राम के भक्त स्वधर्मियों को नीचा और चोटी कटवाने पर ऊँचा क्यों समझते हैं?

'न नीचो मनवात् परः' महापुरुषों का यह उपदेश होते हुए भी यह अन्धेर क्यों?'

—श्री यु.कि. बिड़ला, विशाल हिन्दुत्व, पृ. 16

मन्दिर प्रवेश

'यदि मूर्ति में देवता और भगवान की भावना रखते हो तो वह अपवित्र हो ही नहीं सकती और यदि भगवान की भावना नहीं, तब उसका क्या अपवित्र होगा।'

—श्री यु.कि. बिड़ला, विशाल हिन्दुत्व, पृ. 14

आगा खाँ

कोकोनद कांग्रेस अधिवेशन में मौलाना मुहम्मद अली ने बड़े गर्व के साथ कहा था कि 'मेरे एक मित्र हैं, जो हरिजन समस्या को एकदम समाप्त कर सकते हैं। ...उनके मित्र हजरत अहमद शाह आगा खाँ थे, जो भारत के अछूतों को अपने मत में सम्मिलित कर हरिजन समस्या को हल करने के लिए विकल थे।

हजरत आगा खाँ ने गुजरात के आनन्द ग्राम में अकलंक आश्रम स्थापित कर हरिजन पुरोहितों को अपनी गद्दी का प्रलोभन देकर उनको मुस्लिम बनाने का विशाल आयोजन कर दिया। थोड़ी-सी अवधि में गुजरात के साठ हजार हरिजन इस्मायली मुसलमान बन गये। आगा खाँ गुजरात आए और उनको अकलंक अवतार के रूप में पुजवाया गया। एक लाख हरिजनों ने उनका दीदार हासिल किया। उनके भोजन-वस्त्र का प्रबंध आगा खाँ की ओर से हुआ और सुन्नत कराने पर उनके बच्चों को 10 रुपया छात्रवृत्ति देने का आयोजन हुआ।'

बाबू युगल किशोर बिड़ला ने उसकी रोकथाम के लिए बम्बई प्रदेश हिन्दू सभा और बड़ौदा की आर्य कुमाार सभा को 1400 रु. मासिक देना स्वीकार कर लिया। सेठजी की सहायता वर्षों तक चालू रही। व्यापक शुद्धि आन्दोलन द्वारा साठ हजार मुसलमान शुद्ध किये गये और साथ ही 15000 ईसाई भी शुद्ध हुए।

पृ. 149

धर्मदान

'ऐसा कोई दान नहीं है, जैसा धर्म का दान है। ऐसी कोई मित्रता नहीं है, जैसी धर्म की मित्रता है। ऐसी कोई उदारता नहीं है, जैसी धर्म की उदारता है। ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा धर्म का सम्बन्ध है।'

—अशोक का शिलालेख

× × ×

हम अतीत के गौरव से अनुप्राणित हैं, परन्तु उसको भारत के राष्ट्रजीवन का सर्वोच्च बिन्दु नहीं मानते, हम वर्तमान के प्रति यथार्थवादी हैं, किन्तु उससे बंधे नहीं हैं, आंखों में भविष्य के स्वर्णिम सपने हैं, किन्तु हम निद्रालु नहीं हैं वरन् उन सपनों को कारगर करने वाले जागरूक कर्मयोगी हैं। अनादि, अतीत, अस्थिर वर्तमान तथा चिरन्तन भविष्य की सनातन संस्कृति के हम पुजारी हैं।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

जयप्रकाश नारायण

सम्वत् 1959 विजयादशमी का दिन

12 अक्टूबर, 1902, बिहार के गांव सितावदियारा गंगा व सरयू का संगम स्थल के एक मध्यवित्त कायस्थ परिवार में बाबू हरदयाल के घर में एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया जो विजयादशमी की पर्व परम्परा के अनुरूप ही भ्रष्टाचार के घोर तिमिर पर पुनः प्रकाश की जय स्थापित करने वाला जयप्रकाश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बचपन में बाल सुलभ उछल-कूद व चंचलता के अभाव में बहुत ही शान्त-वृत्ति एवं बहुत कम बोलने के कारण माता ने बच्चे को 'बउल' कहना शुरू किया। यही उनका घर का नाम पड़ गया। पिता खीजकर उसे बूढ़ा बालक कहते थे। यह किसे पता था कि इतना शांत बालक महाक्रान्तिकारी देवदूत बनेगा। यह गूंगा-सा बाल अपने अग्निमुखी भाषणों से सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला भड़का देगा और इस बूढ़े बालक को बच्चे-बूढ़े, जवान नर-नारी सभी लोकनायक मानकर अपने हृदय में पूजेंगे।

प्राइमरी शिक्षा के बाद जयप्रकाशजी को पटना में आगे की शिक्षा के लिए भेजा गया। उनकी गिनती कक्षा के 6 मेधावी लड़कों में से थी। वे सरस्वती भवन, छात्रावास में अनुग्रह बाबू और श्रीकृष्ण आदि के साथ रहते तथा देशभक्ति की भावना से राजनीतिक गतिविधियों में खूब रुचि लेते थे। जयप्रकाश गणित में 100 में से 98 अंक लाते थे, पर उनका हृदय साहित्य की ओर, मस्तिष्क विज्ञान की ओर दौड़ता था। मैट्रिक परीक्षा में जयप्रकाश स्कॉलरशिप के साथ पास हुए।

वे विद्यार्थी-जीवन में दैनिक गीतापाठ करते। गीता स्कूल में भी ले जाते और खाली समय में साथियों को गीता सुनाते और व्याख्या करते। तब से अब तक जयप्रकाशजी का गीता से प्रेम बना हुआ है। इसी गीता के निष्काम कर्मयोग ने उन्हें निःस्वार्थ राष्ट्र सेवा की प्रेरणा दी है। पदलोलुपता से दूर रहकर स्वयं अपने निज के लिए कुछ भी न चाहकर अपना सारा जीवन लोक संग्रह और बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के लिए लगा देने वाला वह अनोखा कर्मयोगी है।

जब जयप्रकाशजी युवा थे तब देश की राजनीति में दो धारायें समानान्तर बह रही थी। एक बंगाल की विपल्वी क्रान्तिकारी धारा जिसके अन्तर्गत खुदीराम बोस ने बिहार के मुजफ्फरनगर में बम फेंका था और श्री अरविन्द, कन्हाईलाल दत्त, वारीन्द्र घोष, विपिनचन्द्र पाल आदि के अग्निमुखी भाषणों तथा स्फुलिंग-वर्षी बमों से वातावरण ज्वलन्त था।

दूसरी धारा थी गांधीजी की सत्याग्रह व अहिंसा की धारा। गांधीजी ने चम्पारन में सत्याग्रह किया तब बिहार के युवक उनकी सुरक्षा, दृढ़ता और जनता से एकात्मता की ओर आकर्षित हुआ। जयप्रकाशजी पर दोनों का प्रभाव हुआ। वे खादी के कपड़े पहनते और देश की आजादी के लिए अपने जीवन की योजनाएं बनाने लगे। उन्होंने गांधीजी की गीता भक्ति भी सुनी और यह भी सुना की फांसी के तख्ते पर झूलते समय खुदीराम बोस गीता का श्लोक दोहराता रहा। वे दोनों धाराओं के बीच के मार्ग में झूलते रहे—

क्रान्ति का मार्ग या शान्ति का मार्ग।

गांधी की गीता या खुदीराम की गीता।

उन्हीं दिनों पुलिस ने क्रान्तिकारियों की खोज हेतु प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार के घर को घेर लिया। जयप्रकाश आकर्षित हुए एक बंगाली नवयुवक से और जयप्रकाश पर क्रान्तिकारी हाथों का जादू चल गया। कभी गंगा के किनारे, कभी घाट पर, कभी खण्डहर में, कभी मैदान में सवेरे के अंधेरे में उन्हें बम, पिस्तौलों एवं गोला बारूद की रोमांचकारी योजनाओं से आकर्षित कर वह जयप्रकाश से एक गीत गवाता—

गोरन को मार-मार कर

बोरन में भरीहो।

जयप्रकाश के मन में बड़ी हलचल थी, किन्तु कोलकाता से उस युवक की खोज में सी.आई.डी. के कुछ अफसरों के पटना पहुंच जाने के कारण वह क्रान्तिकारी नवयुवक लुप्त हो गया। जयप्रकाश उनकी खोज में घाट-घाट भटकते रहे। किन्तु वह नहीं मिला। इसलिए कुछ देर के लिए क्रान्ति का जादू टल गया और जयप्रकाशजी गांधी के मार्ग की ओर आकर्षित हुए।

जयप्रकाशजी की साहित्य में बड़ी रुचि थी। वे मैथिलीशरण गुप्त, भारतेन्दु, माखनलाल चतुर्वेदी से बहुत प्रभावित हुए। भारतेन्दु का नाटक 'भारत दुर्दशा' पढ़कर रो उठे। गुप्तजी की भारत-भारती पढ़कर करुणा में डूब गए और रामचरितमानस पढ़कर मन शान्त हुआ।

जयप्रकाशजी का विवाह प्रसिद्ध जनसेवी बाबू ब्रजकिशोर की सुपुत्री प्रभावती

देवी से हुआ। यह सम्बन्ध कराते हुए राजेन्द्र प्रसाद उपस्थित थे। राष्ट्रसेवा कार्य में प्रभावती का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा।

सन् 1919 के जलियांवाला काण्ड के भीषण नरसंहार पर रवीन्द्रनाथ टैगोर का अपनी सर की उपाधि का त्याग आदि की घटनाओं से जयप्रकाश का मन मचल उठा। जयप्रकाशजी अपने 5 साथियों के साथ कालेज छोड़कर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

स्कूल-कालेजों के बहिष्कार के कारण विद्यालय त्यागने वाले विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किए गए। पटना में बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुई। जिसके प्रधान आचार्य हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और वहीं जयप्रकाश नारायण पढ़ने लगे।

फिर जयप्रकाश के मन में अमरीका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जागी। 20 वर्ष के जयप्रकाश अमरीका गए और उनकी पत्नी साबरमती आश्रम में गांधीजी के पास चली गई। अमरीका में जाकर जयप्रकाशजी ने प्रारम्भ में अंगूर के खेत में मजदूरी की तथा कुछ पैसे जमाकर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से आई.ए. प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद आगे का खर्च चलाने के लिए पुनः अंगूर के खेत में काम करने लगे। शिकागो के एक होटल में एक मेहत्तर का भी काम किया। जब अर्थ संकट से परेशान हुए तो हिमालय की बूटियां नाम से सेन्ट, क्रीम, हेयर लोशन बनाकर हब्सी महल्लों में बेचने लगे। इसी व्यवसाय में एक स्त्री ने उनसे बहुत-सा सामान लेकर उन्हें ठग लिया। पैसा नहीं दिया। जयप्रकाश आठ माह बीमार रहे। उन्होंने ओहिया विश्वविद्यालय से बी.ए. पास किया। पुनः वहीं से एम.ए. किया। पुनः पीएच.डी कर रहे थे। तभी घर से माताजी की बीमारी का समाचार आया। इसलिए जयप्रकाश अमरीका में सात साल बिता कर घर वापस लौटे। अमरीका में ही जयप्रकाशजी कम्यूनिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आये और प्रभावित हुए और बहुत समय तक वे खुलेआम अपने आपको कम्यूनिस्ट घोषित करते रहे।

लाहौर कांग्रेस में गांधी ने जे.पी. की भेंट जवाहरलाल से करवाई। दोनों की मित्रता बढ़ती गई। जे.पी. कांग्रेस के स्थायी मंत्री बन गए।

सन् 1930 के नमक सत्याग्रह में जे.पी. भाग लेने के लिए तैयार थे। तभी जे.पी. की माताजी का स्वर्गवास हो गया।

जब नेहरूजी बंदी बना लिए गए तब जे.पी. ने पारसी का भेष बनाकर बम्बई में श्री सरोजिनी नायडू को कागजात हवाले कर दिए। कुछ दिनों बाद जे.पी. ने बनारस में गुप्त बैठक रखी जिसमें मालवीयजी और राजेन्द्र प्रसाद भी आए।

जे.पी. गुप्त रूप से मद्रास चले गए। वहां पर वे स्टेशन पर पकड़े गए और नासिक जेल में बन्द कर दिए गए। नासिक जेल में जे.पी. ने संकल्प किया—किसान और मजदूरों का राज्य लाने के लिए समाजवाद लाना होगा।

भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करती थी। सत्याग्रहियों पर हमला करती थी। तिरंगे झण्डों को छीन लेती और अंग्रेजों का साथ देती थी। नेहरूजी रूस घूम आए और वे भी समाजवाद से प्रभावित थे।

सन् 1932 में बिहार सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। इसका सदस्य बनने के पहले कांग्रेस का सदस्य होना अनिवार्य था। सन् 1934 में बिहार में भयंकर भूकंप आया। जिसमें जे.पी. ने सहायता केन्द्र में मंत्री के रूप में कार्य किया।

समाजवादी आंदोलन—जे.पी. बिहार सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की रचना में लग गए। 1938 का लाहौर अधिवेशन जे.पी. की अध्यक्षता में हुआ। उनके साथी थे लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन आदि। 1937 में जब कांग्रेस के मंत्री बनने लगे तो जे.पी. ने विरोध किया और गिरफ्तार हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जब गांधीजी ब्रिटेन को नैतिक समर्थन देने के पक्ष में थे तब जे.पी. ने उसका विरोध किया। वे अवसर का लाभ उठा कर देश को आजाद कराना चाहते थे। कांग्रेस कार्यसमिति ने ब्रिटेन से कहा कि वह हिन्दुस्तान के संबंध में अपना उद्देश्य घोषित करे। ब्रिटेन ने कांग्रेस कार्यसमिति के अनुरोध को ठुकरा दिया। फलस्वरूप कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। उधर, कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष बोस चुने गए जिसे गांधीजी ने व्यक्तिगत हार कहा। जे.पी. ने दोनों पक्षों में समझौते के विफल प्रयास किए। जे.पी. को 1940 में जमशेदपुर के एक भाषण के आधार पर गिरफ्तार कर लिया गया। वे नौ मास के बाद हजारीबाग की कारा से छूट गए। किन्तु, इसके बाद शीघ्र ही मुम्बई में पुनः गिरफ्तार कर लिए गए। जेल में प्रभावती मिलने आई तो जे.पी. ने एक गुप्त पुलिंदा प्रभावती के माध्यम से बाहर भेजना चाहा पर वह पकड़ा गया। 18 अक्टूबर, 1941 को देश भर के अखबारों में छपा—जयप्रकाश हिन्दुस्तान के षड्यंत्री नम्बर एक हैं। ये लोग डकैतियां डालेंगे और विदेशों से सम्पर्क करके सशस्त्र विद्रोह करेंगे आदि-आदि। इस समाचार से बड़ा हंगामा मचा।

अगस्त, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी तथा सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए। जनता घिसती-पिटती जा रही थी। जे.पी. ने दृढ़ निश्चय किया कि जान पर खेलकर भी बाहर जाना होगा। वे छह लोगों के साथ जेल से बाहर हो गए। उन्हें पुनः पकड़ने के लिए पहली

बार दस हजार रुपये, दूसरी बार 21 हजार रुपये का इनाम घोषित किया गया। जेल से बाहर आकर जे.पी. ने बनारस में गुप्त रूप से कुछ खुली चिट्ठी लिखी। (1) आजादी के सैनिकों के नाम, (2) अमरीका के फौजी अफसरों के नाम, (3) सैनिकों के नाम, (4) विद्यार्थियों के नाम। जे.पी. के प्रयत्न से क्रान्ति की ज्वाला फिर से भड़कने लगी। अतः जे.पी. पुनः पकड़ लिए गए और उन्हें लौहार किले में रखा गया। उन्हें बर्फ की चट्टान पर बैठाया जाता था। सोने नहीं दिया जाता था और उनकी ओर से वकालत करने वाले वकील को भी पकड़ लिया गया।

6 मई 1944 में गांधी की रिहाई के पश्चात् कैबिनेट मिशन भारत आया तो गांधीजी ने जे.पी. और लोहिया को छोड़ने की शर्त रखी। तब जे.पी. और लोहिया को मुक्त किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर ने जे.पी. के यश में लिखा है—

जयप्रकाश है नाम समय की
करवट का, अंगड़ाई का
भूचाल बवण्डर के ख्वाबों से
भरी हुई तरुनाई का
है जयप्रकाश वह नाम जिसे
इतिहास समादर देता है
बढ़ कर जिसके पदचिह्नों को
उर पर अंकित कर लेता है।

जे.पी. ने जब देखा कि कांग्रेस के नेतागण सरकार में शामिल होने को बेचैन हो उठे हैं तो उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी से इस्तीफा दे दिया और सन् 1947 के प्रारम्भ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का ऐतिहासिक अधिवेशन डॉ. लोहिया की अध्यक्षता में हुआ। इसमें कांग्रेस का नाम काट कर शुद्ध सोशलिस्ट पार्टी बनाई गई। तभी गांधीजी ने जे.पी. को मनाकर कहा कि वे कांग्रेस अध्यक्ष बन जाएं। पर नेहरूजी ने इसे पसंद नहीं किया।

1947 में देश के विभाजन से क्षुब्ध होकर जे.पी. ने गांधीजी से कहा कि मैं कांग्रेस से अलग होना चाहता हूं। गांधीजी ने कहा बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। आजादी के बाद बिहार के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में नेहरू ने हवाई सर्वेक्षण किया और रोष में भर कर कहा कि मैं बम गिराऊंगा और इन बिहारियों को शांत करूंगा। पटना में एक सभा में विद्यार्थियों ने नेहरूजी को घेरकर उनके कपड़े फाड़ दिए। तब जयप्रकाश ने नेहरू की रक्षा की और छात्रों से माफी मंगवाई।

जनवरी, 1948 के प्रथम सप्ताह में जब गांधीजी दिल्ली गए तो जयप्रकाशजी साथ थे। कोई कांग्रेसी गांधीजी की अगवानी करने नहीं आया। जयप्रकाशजी कांग्रेस तथा सरकार, दोनों द्वारा गांधीजी के प्रति इस अवज्ञा से बहुत दुःखी हुए। 30 जनवरी, 48 को गांधीजी की हत्या के बाद कांग्रेसी नेताओं ने विलाप का खूब नाटक किया। जयप्रकाशजी मुम्बई से तुरन्त दिल्ली पहुँचे। जयप्रकाश गांधीजी के बिना आश्रयविहीन हो गए। उन्होंने दुःखी होकर कहा, 'एक गलती गांधी ने की, पाकिस्तान बनने का विरोध न करके, दूसरी गलती मैंने की गांधी की बात मानकर।' जयप्रकाश आजादी को अधूरी मानते थे तथा उन्होंने संविधान सभा की सदस्यता अस्वीकार कर दी थी। 1948 के नासिक सम्मेलन में सोशलिस्टों ने कांग्रेस से पूरी तरह अलग हो जाने का निर्णय किया। जयप्रकाशजी को अपने खून-पसीने से निर्माण की हुई संस्था (कांग्रेस) को छोड़ना पड़ा। 1948-51 तक जे.पी. प्रभावती के साथ सोशलिस्ट पार्टी के संगठन के लिए देशभर का दौरा करते रहे। 1950 के सोशलिस्ट पार्टी के अधिवेशन में जे.पी. और लोहिया के मतभेद खुलकर सामने आए। लोहिया ने सम्मेलन में भाग नहीं लिया। सन् 1952 के चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी की करारी हार हुई। कुछ नेता सारी जिम्मेदारी जे.पी. पर डालते थे। कुछ ने कहा, जे.पी. जवाहर का दोस्त है। इन्होंने गुप्त रूप से कांग्रेस की मदद की। जे.पी. का दिल टूट गया। उन्होंने कहा, दोस्तो! मैं बिहार छोड़ रहा हूं। उनकी आँखों में आंसू आ गए। पुनः कृपलानी से मिलकर मजदूर पार्टी बनाते हैं।

राजनीति से निराश होने पर उन्हें राजनीति से वैराग्य हो गया। वे विनोबा के सर्वोदय संदेश की शरण में आए। 1954 में बोधगया सर्वोदय सम्मेलन में जे.पी. ने अपना जीवनदान घोषित किया। जे.पी. ने अहिंसक क्रान्ति के लिए जीवन समर्पित किया। जे.पी. ने नवादा के पास के एक गांव सेखोदेवरा में सर्वोदय आश्रम की स्थापना की। धीरे-धीरे वही उनका मुख्यालय बन गया।

1962 में देश पर चीनी आक्रमण के समय जे.पी. ने तिब्बत की स्वायत्तता और देश की रक्षा के लिए आह्वान किया। जे.पी. का विश्वास था कि इसका उत्तर सर्वोदय ही हो सकता है। पुनः जे.पी. ने अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय शांति मिशनों की अध्यक्षता की। 1971 में चम्बल घाटी के डाकुओं का हृदय परिवर्तन कर उन्हें आत्मसमर्पण के लिए राजी किया।

1971 में जे.पी. ने भ्रष्टाचार निवारण तथा लोकतंत्र संरक्षण के लिए नया अभियान प्रारम्भ किया।

गुजरात के मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल ने तेल व्यापारियों, मिल मालिकों से लाखों रुपया रिश्वत लेकर उन्हें मनमानी तौर पर दाम बढ़ाने की छूट दे दी। इसके

विरोध में छात्र एवं युवा वर्ग ने आन्दोलन छेड़ा। जे.पी. ने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। श्री मोरारजी देसाई ने अनशन किया। गुजरात सरकार का पतन हुआ।

बिहार में वैसा ही भ्रष्टाचार का दौर दौरा होने के कारण जनता में असंतोष था। युवा वर्ग के लोग जे.पी. के पास मार्गदर्शन के लिए पहुँचे। जे.पी. ने स्वीकार कर लिया और बिहार आंदोलन का आह्वान किया। जे.पी. ने बिहार में मंत्रिमण्डल के भ्रष्ट होने के कारण उनसे त्यागपत्र की मांग की। साथ ही एम.एल.ए. से भी। पर यह स्वीकार नहीं हुआ सरकार को। तब इसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए। तब अंध बर्बर सरकार ने छात्रों की उचित मांगों को स्वीकार करने के बजाय गया में, पटना में निर्मम लाठीप्रहार एवं गोलियां चलाई। कितने ही आहत हुए और कितने ही मृत्यु को प्राप्त हुए। फिर जे.पी. ने बिहार बंद का आह्वान किया। पटना में छात्रों ने सरकार के विरुद्ध विशाल प्रदर्शन किया। तब निर्मम लाठीप्रहार हुए। जे.पी. की तो नानाजी देशमुख ने अपनी बाजू तुड़ा कर प्राण रक्षा की। फिर जे.पी. ने भ्रष्टता उन्मूलन के लिए पूरे बिहार का दौरा किया। तब बहुत से लोगों के सम्पर्क में आए। सभी ने यह सुझाव दिया कि भ्रष्टाचार तो पूरा भारत व्यापी है। अत: इसे देशव्यापी रूप दे देना चाहिए। तब जे.पी. ने देशव्यापी सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए आह्वान किया और आन्दोलन सम्पूर्ण देशव्यापी हो गया। गुजरात में कांग्रेस की पराजय, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा सर्वोच्च सत्ता इन्दिराजी की भ्रष्टता का सिद्ध होना और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश नहीं मिलने पर इन्दिराजी द्वारा गद्दी की सुरक्षा के लिए आपातस्थिति की घोषणा हुई।

सम्पूर्ण क्रान्ति—समाज के प्रत्येक वर्ग में क्रान्ति की आवश्यकता और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति की आवश्यकता है।

(क) शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन—वर्तमान शिक्षा पद्धति क्लर्क ढालने की मशीन है। कोई भी विदेशी शक्ति किसी देश में स्थापित होती है तो उसका प्रथम कार्य स्व पर प्रहार करना होता है। स्व विहीन करना होता है। अत: अंग्रेजों ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन लिया। उन्हें अपना प्रशासन चलाने के लिए क्लर्कों की आवश्यकता थी। अत: स्व विहीन परावलम्बी बनाने वाली शिक्षा पद्धति को अपनाया। उस समय की शिक्षा पद्धति और वर्तमान शिक्षा पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। आज भी शिक्षा पद्धति क्लर्क ढालने की मशीन है। अत: इसमें आमूल परिवर्तन आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा पद्धति का व्यावहारिकता से सम्बन्ध नहीं है। विद्यार्थी-जीवन तक तो छात्र पुस्तक चाटते रहते हैं। छात्र जीवन की समाप्ति होते ही उन पुस्तकों को बांध कर ताक पर रख देता है और मरने तक जीवन से जूझता रहता है। शिक्षा के पश्चात् इसका व्यावहारिक उपयोग ही नहीं रह जाता।

(ख) प्रशासन में क्रान्ति

(ग) चुनाव पद्धति में परिवर्तन

राजनीतिक क्रान्ति में लोकजीवन पद्धति में आस्था।

विरोधी दल का साझा मंच बनना।

प्रेस की स्वतंत्रता।

सामाजिक क्रान्ति।

धार्मिक क्रान्ति।

आर्थिक क्रान्ति।

राजनीति कीचड़ से भरी है। कीचड़ को साफ करना है तो कीचड़ के अन्दर जाना ही पड़ेगा, मगर ऐसा करते समय हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि वह कीचड़ के अन्दर उस कीचड़ को साफ करने आया है।

—दीनदयाल उपाध्याय

न वै राज्यं व राजासीन्न न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

श्रीमहाभारत शान्तिपर्व, 59/14

पहले न कोई राज्य था, न राजा था, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला था। समस्त प्रजा धर्म द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

छा. उ., 5/11/5

राजा अश्वपति कहते हैं—मेरे जनपद में न कोई चोर है, न कोई कृपण है, न मद्य पीने वाला ही है, न कोई अग्निहोत्ररहित है, न कोई अनपढ़ है, न कोई व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी का तो कहना ही क्या?

संघ—भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच

भारत जो प्राचीनकाल में विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था, विगत 12 शताब्दियों में अनेक बर्बर एवं क्रूर जातियों से पदाक्रान्त एवं पराभूत इसलिये हुआ था कि हम पर वैभव के भोग से विलास आ गया। विलास के स्वार्थ से समाज में संगठन के स्थान पर फूट छा गई तथा व्यक्तिगत अहंकार या राज्यगत स्वार्थों के संघर्ष में देश के नागरिकों एवं राजाओं का राष्ट्रीय चरित्र लुप्त हो गया।

डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने सन् 1925 में राष्ट्र के इस महारोग का निदान कर, भोग के स्थान पर त्याग के आधार पर राष्ट्रीय चारित्र्य सम्पन्न तेजस्वी, तपस्वी तरुणों का देशव्यापी संगठन प्रारम्भ किया जो आज 54 वर्षों की तपस्या के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच बन गया।

प्रो. ओबराय ने कहा—जब मुस्लिम लीग के गुण्डों ने गाँधीजी पर आक्रमण की धमकी दी थी तो हरिजन कालोनी दिल्ली में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनेक स्वयंसेवक दिन-रात गाँधीजी की रक्षा हेतु पहरा देते थे। काश्मीर की रक्षा में अनेक संघबंधु बलिदान हुए। चीनी आक्रमण के समय स्वयं पंडित नेहरू ने स्वयंसेवकों की देशभक्ति की सराहना की। पाकिस्तान के आक्रमण के समय शास्त्रीजी ने संघ से यथेष्ठ सहायता ली, नेपाल-भारत सम्बन्ध सुधारने में गुरुजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 15 अगस्त, 1947 को मुस्लिम लीग द्वारा सभी मंत्रियों के सामूहिक वध का षड्यंत्र संघ के स्वयंसेवकों ने निरस्त किया। जयप्रकाशजी संघ के परम प्रशंसक बन गये।

दीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायः अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निद्रित शव मानो जागृत हो रहा है...

यह देखो भारत माता धीरे-धीरे आँखें खोल रही है। यह कुछ ही देर सोई थी। उठो, उसे जगाओ और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमण्डित करके भक्ति भाव से उसे उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो। **—स्वामी विवेकानन्द**

सेवा का पुनीत संकल्प

मानव के व्यक्तित्व के तीन वृत्त (दायरे) होते हैं। एक पेट का दायरा, दूसरा परिवार का दायरा और तीसरा समाज का दायरा। लगभग ८0 प्रतिशत लोग पेट के दायरे तक ही चिन्ता करते हैं। लगभग 1९-20 प्रतिशत परिवार के चार-छः सदस्यों के पालन-पोषण की ही चिन्ता करते हैं। हजारों में कोई एक सज्जन समाज के दायरे की चिन्ता करता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज का दायरा विगत एक हजार वर्षों से टूटा हुआ है।

हम ईमानदारी से अपने कलेजे पर हाथ रखकर अपने आप से पूछें कि पिछले चौबीस घंटों में हमने कितना समय पेट के लिए, कितना समय परिवार के लिए और कितना समय समाज के लिए दिया है? इसके उत्तर में हमें स्वयं ही अनुभव हो जाएगा कि हम अपने समस्याग्रस्त, संकटापन्न समाज की कितनी भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं। यदि चार-छः दिन पेट की उपेक्षा की जाय तो पेट विद्रोह कर उठेगा, शरीर का बल क्षीण हो जायेगा तथा हम अर्धमृत से हो जायेंगे। यदि दो-चार मास परिवार की सेवा-सुरक्षा पर ध्यान न दिया जाय तो परिवार उजड़ जायेगा। हम तनिक सोचें कि जिस समाज की हमने एक हजार वर्ष तक चिन्ता नहीं की उसकी कैसी दुर्गति हुई होगी। पिछले हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है कि सिन्ध के राजा दाहिर की पुत्रियों को बन्दी बनाकर बगदाद ले जाया गया तथा वहाँ उन्हें घोड़े की पूँछ के पीछे बाँध कर बाजारों में घसीट-घसीट कर मारा गया, सहस्रों-पुरुषों को गुलाम बनाकर तथा नारियों को दासी एवं रखैल बनाकर विदेशों में बेचा गया, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में जिन्दा चुन दिया गया, ब्रह्मज्ञानी-सन्तों का चौराहों पर शीर्ष-छेदन हुआ, तपे हुए तवों पर और तेल के कड़ाहों में जलाया गया। वेद-मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, कश्मीर के ब्राह्मणों का सामूहिक धर्मान्तरण हुआ, स्वदेश का एक-चौथाई भाग हिंसा एवं रक्तपात द्वारा काट कर परदेस बना दिया गया। इतिहास साक्षी है कि समाज के दुर्बल रहने पर न पेट सुरक्षित रहता है न परिवार। निर्बल समाज की रोटी एवं बेटी दोनों को दुष्ट लोग लूट कर ले जाते हैं।

हरिजन एवं वनवासी बन्धुओं को त्रिविध मार का शिकार बनना पड़ा है। एक तो निर्धन और अशिक्षित रहने के कारण वे पहले से ही पिछड़े हुए थे। दूसरे, विदेशियों का प्रहार सबसे अधिक उन्हीं पर हुआ। तीसरे वे हमारा स्नेह एवं सहयोग भी नहीं प्राप्त कर सके। वास्तव में यह तीसरा कारण ही सबसे प्रमुख कारण है। हमारी उपेक्षा से ही वे अशिक्षित एवं निर्धन बने रहे तथा हमारी सामाजिक उपेक्षा के महापाप के कारण ही वे विदेशी शक्तियों के अत्याचार का शिकार बनते रहे।

आज अपने युगों की उपेक्षा के महापाप को हमें धोना है। लम्बे तिरस्कार की ब्याज सहित क्षतिपूर्ति आज अपनी भरपूर सेवा द्वारा करनी है। समाज बचेगा तो हमारा पेट भी बचेगा और परिवार भी। यदि समाज सबल होगा तो न कोई हमारे पेट पर लात मार सकेगा, न परिवार की मान-मर्यादा लूट सकेगा तथा न हमारी श्रद्धा का खून होगा।

आइये, हम समाजसेवा का पवित्र संकल्प धारण करें।